'भारतीय आधुनिक शिक्षा' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोध कर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे–शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएँ, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

राजरानी

अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा	योगेश कुमार
किरन वालिया	अनुपम आहूजा
एम.वी. श्रीनिवासन	सुनीता कुमारी नागर (जे.पी.एफ.)

प्रकाशन प्रभाग के सदस्य

विभागाध्यक्ष	अशोक श्रीवास्तव
मुख्य संपादक	नरेश यादव
सहायक संपादक	हेमन्त कुमार
उत्पादन	प्रकाशवीर सिंह

आवरण

साएमा

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्केरे हल्ली एक्सटेंशन,
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरू 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लेक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : 50.00 रुपए वार्षिक : 200.00 रुपए

परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राथमिक शिक्षक' त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उपरोक्त दो त्रैमासिक पत्रिकाएँ शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हों। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी या फ्लॉपी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें –

विभागाध्यक्ष (पत्रिका प्रकोष्ठ), प्रकाशन प्रभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा चार दिशाएँ प्रिंटर्स, जी 39-40, सैक्टर-3, नोएडा 201 301 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 32 अंक 1 जुलाई 2011

इस अंक में

संपादकीय			3
नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009			5
आर्थिक सबलीकरण के स्त्री-विमर्श में शिक्षा की भूमिका एवं उत्तरदायित्व	–	शरद सिन्हा एवं जितेन्द्र कुमार लोढ़ा	25
प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत प्रशासन व्यवस्था की प्रभावशीलता का अध्ययन	–	सुषमा पाण्डेय	36
बदलते पड़ावों पर चौकस निगाह भिन्न रूप से सक्षम बच्चों का विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों में परागमन (ट्रांज़िशन): एक अध्ययन	–	शारदा कुमारी	61
रेखाचित्रों की बदलती भूमिका	–	राजेश कुमार निमेश	75
भारतवर्ष में साक्षरता के विभिन्न पहलू	–	मृदुला भदौरिया एवं रश्मि गोरे	88
व्यर्थ शोध, निरर्थक सिद्धांत और जोखिम में शिक्षा	–	पॉल स्मेयर्स	97
मध्य प्रदेश प्राइमरी और मिडिल स्तर पर मूल्याँकन के नए मानदण्ड : शैक्षिक, सह-शैक्षिक और व्यक्तिगत व्यवहार	–	शशि मित्तल	123

भूमण्डलीकरण एवं शिक्षक सशक्तीकरण	–	संजीव शुक्ला	127
वर्तमान संदर्भ में संस्कृत भाषा की उपादेयता	–	सुनीता कुमारी नागर	131
विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता का विकास	–	हंसराज पाल एवं मंजुलता शर्मा	137

संपादकीय

प्रिय पाठकों, इस अंक में हमने आपके लिए सबसे पहले शामिल किया है 'नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009'। वास्तव में हम सब जो किसी-न-किसी तरह से शिक्षा के विभिन्न पहलुओं से जुड़े हुए हैं उनके लिए यह आवश्यक है कि इस अधिनियम के प्रावधानों को जानें और उनकी बारीकियों को समझने का प्रयास करें। जब हम इन प्रावधानों को जानेंगे तभी तो इसकी जानकारी उनके अभिभावकों तक पहुँचा पाएँगे जिनके लिए यह अधिनियम लाया गया है, यानि कि छ: से 14 वर्ष तक के वे बच्चे जो विद्यालय में नामांकित नहीं हैं। यही नहीं, हम शिक्षा व्यवस्था में विभिन्न स्तरों पर बैठे ज़िम्मेदार अधिकारियों और कर्मचारियों को भी सही जानकारी सही ढंग से दे पाएँगे। यह अधिनियम यदि बच्चों को शिक्षा का अधिकार देता है तो साथ ही हमें शिक्षा संबंधी हमारे कर्त्तव्यों का भान भी कराता है। क्या नीचे लिखे सच से हम सबका सामना नहीं होता?

चौराहे पर मेरी अँगुली पकड़कर भीख माँगता वह बच्चा स्कूल जाने की उम्र का था।

'क्यों नहीं स्कूल जाते?'

यह पूछने पर अपनी माँ की ओर इशारा करता है। माँ आह भरती हुई कहती है–

'गरीब हैं हम, फीस और कपड़े नहीं दे सकते'। यदि तुम्हें कुछ खर्च न करना पड़े तो,

'तो भी नहीं, फारम भी भरना नहीं आता,'

इसमें भी दिक्कतें न हों तो?

'तो... कौन माँ नहीं चाहेगी?'

कक्षा में बैठे अपने बच्चे को देख उसकी माँ ने मेरा हाथ पकड़ा और कहा,

'आज मेरा सपना पूरा हुआ'

एक मीठा सच मेरे सामने था। शिक्षा – किसी का अधिकार, किसी का सपना और किसी के लिए कर्त्तव्य। इस अंक में अन्य लेखों के रूप में शामिल हैं शिक्षा से जुड़े विविध मुद्दे। शरद सिन्हा और जितेंद्र कुमार लोढ़ा अपने लेख के माध्यम से आर्थिक सबलीकरण के स्त्री विमर्श में शिक्षा की भूमिका एवं उत्तरदायित्व को रेखांकित करते हैं। इस अंक में शामिल तीन लेख जो शोध अध्ययनों पर आधारित हैं, भारतीय स्कूली शिक्षा की विशेषताओं और चुनौतियों को सामने रखते हैं। सुषमा पाण्डेय का लेख प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत प्रशासन व्यवस्था की प्रभावशीलता से जुड़े कुछ परिणामों को सामने रखता है तो शारदा कुमारी का अध्ययन भिन्न रूप से सक्षम बच्चों के विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों में परागमन (ट्रांज़िशन) जैसे पहलू को प्रकाश में लाता है। मृदुला भदौरिया और रश्मि गोरे द्वारा संयुक्त रूप से किया गया अध्ययन भारतवर्ष में साक्षरता के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देता है। एक ओर भारतीय शैक्षिक शोध अध्ययन

यथार्थ दर्शाते हैं और दूसरी ओर पॉल स्मेयर्स का लेख 'व्यर्थ शोध, निरर्थक सिद्धांत और जोखिम में शिक्षा' शिक्षा और शोध जगत का एक दूसरा ही पहलू सामने रखता है जिसमें शोध धारणाओं के दोषपूर्ण होने की बात कही गई है और बताया गया है कि शैक्षणिक शोध के क्षेत्र में बहुत कुछ करना बाकी है।

इस अंक में शामिल राजेश कुमार निमेश, शशि मित्तल, संजीव शुक्ला, सुनीता कुमारी नागर तथा हंसराज पाल और मंजुलता शर्मा के लेख कई अन्य सरोकारों जैसे 'रेखाचित्रों की बदलती भूमिका'; 'मूल्यांकन के नए मानदण्ड'; 'वर्तमान संदर्भ में संस्कृत भाषा की उपादेयता' तथा 'विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता का विकास' को स्पर्श करते हैं और नए आयाम सामने रखते हैं।

हमें आशा है कि मिश्रित रंगों से सराबोर यह अंक भी आपको पसंद आएगा।

अकादमिक संपादकीय समिति

नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

(2009 का अधिनियम संख्यांक 35)
(26 अगस्त 2009)

छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के साठवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:-

अध्याय 1

प्रारंभिक

संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ

1.(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 है।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर होगा।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे।

परिभाषाएँ **2.** इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(क) "समुचित सरकार" से, -

(i) केंद्रीय सरकार या ऐसे संघ राज्य क्षेत्र के, जिसमें कोई विधान-मंडल नहीं है, प्रशासक द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी विद्यालय के संबंध में, केंद्रीय सरकार;

(ii) उपखंड (i) में विनिर्दिष्ट विद्यालय से भिन्न, -

(क) किसी राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर स्थापित किसी विद्यालय के संबंध में, राज्य सरकार;

(ख) विधान-मंडल वाले किसी संघ राज्यक्षेत्र के भीतर स्थापित विद्यालय के संबंध में उस संघ राज्यक्षेत्र की सरकार, अभिप्रेत है;

(ख) "प्रति व्यक्ति फीस" से विद्यालय द्वारा अधिसूचित फीस से भिन्न किसी प्रकार

का संदान या अभिदाय अथवा संदाय अभिप्रेत है;

(ग) "बालक" से छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु का कोई बालक या बालिका अभिप्रेत है;

(घ) "अलाभित समूह का बालक" से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक रूप से और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या ऐसी अन्य बात के कारण, जो समुचित सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट की जाए, अलाभित ऐसे अन्य समूह का कोई बालक अभिप्रेत है;

(ङ.) "दुर्बल वर्ग का बालक" से ऐसे माता-पिता या संरक्षक का बालक अभिप्रेत है, जिसकी वार्षिक आय समुचित सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट न्यूनतम सीमा से कम है;

(च) "प्रारंभिक शिक्षा" से पहली कक्षा से आठवीं कक्षा तक की शिक्षा अभिप्रेत है;

(छ) किसी बालक के संबंध में "संरक्षक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसकी देखरेख और अभिरक्षा में वह बालक है और इसके अंतर्गत कोई प्राकृतिक संरक्षक या किसी न्यायालय या किसी कानून द्वारा नियुक्त या घोषित सरंक्षक भी है;

(ज) "स्थानीय प्राधिकारी" से कोई नगर निगम या नगर परिषद् या जिला परिषद् या नगर पंचायत या पंचायत, चाहे जिस नाम से ज्ञात हो, अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विद्यालय पर प्रकाशित नियंत्रण रखने वाले किसी नगर, शहर या ग्राम में किसी स्थानीय प्राधिकारी के रुप में कार्य करने के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन सशक्त ऐसा अन्य स्थानीय प्राधिकारी या निकाय भी है;

(झ) "राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग" से बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है; 2006 का 4

(ञ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है;

(ट) "माता-पिता" से किसी बालक का प्राकृतिक या सौतेला या दत्तक पिता या माता अभिप्रेत है;

(ठ) "विहित" से, इस अधिनियम के बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ड) "अनुसूची" से इस अधिनियम से उपाबद्ध अनुसूची अभिप्रेत है;

(ढ) "विद्यालय" से प्रारंभिक शिक्षा देने वाला कोई मान्यताप्राप्त विद्यालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं:-

(i) समुचित सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन कोई

विद्यालय;

(ii) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी से अपने संपूर्ण व्यय या उसके भाग की पूर्ति करने के लिए सहायता या अनुदान प्राप्त करने वाला कोई सहायता प्राप्त विद्यालय;

(iii) विनिर्दिष्ट प्रवर्ग का कोई विद्यालय; और

(iv) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी से अपने संपूर्ण व्यय या उसके भाग की पूर्ति करने के लिए किसी प्रकार की सहायता या अनुदान प्राप्त न करने वाला कोई गैर-सहायता प्राप्त विद्यालय;

(ण) "अनुवीक्षण प्रक्रिया" से किसी अनिश्चित पद्धति से भिन्न दूसरों पर अधिमानता में किसी बालक के प्रवेश के लिए चयन की पद्धति अभिप्रेत है;

(त) किसी विद्यालय के संबंध में "विनिर्दिष्ट प्रवर्ग" से, केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, सैनिक विद्यालय के रूप में ज्ञात कोई विद्यालय या किसी सुभिन्न लक्षण वाला ऐसा अन्य विद्यालय अभिप्रेत है जिसे समुचित सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किया जाए;

(थ) "राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग" से बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 की धारा 3 के अधीन गठित राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है। 2006 का 4

अध्याय 2
निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार।

निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार

3. (1) छह वर्ष से चौदह की आयु के प्रत्येक बच्चे को, प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी आस-पास के विद्यालय में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए, कोई बालक किसी प्रकार की फीस या ऐसे प्रभार या व्यय का संदाय करने के लिए दायी नहीं होगा, जो प्रारंभिक शिक्षा लेने और पूरी करने से उसे निवारित करे:

परंतु निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 का धारा 2 के खंड (झ) में यथापरिभाषित निःशक्तता से ग्रस्त किसी बालक की उक्त अधिनियम के अध्याय 5 के उपबंधों के अनुसार निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा। 1996 का 1

ऐसे बालकों, जिन्हें प्रवेश नहीं दिया गया है या जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की है, के लिए विशेष उपबंध।

4. जहाँ, छह वर्ष से अधिक की आयु के किसी बालक को किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं दिया गया है या प्रवेश तो दिया गया है किंतु उसने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की है, तो उसे उसकी आयु के अनुसार समुचित कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा:

परंतु जहाँ किसी बच्चे को, उसकी आयु के अनुसार समुचित कक्षा में सीधे प्रवेश दिया जाता है, वहाँ उसे अन्य बच्चों

के समान होने के लिए, ऐसी रीति में और ऐसी समय-सीमा के भीतर, जो विहित की जाए, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा:

परंतु यह और कि प्रारंभिक शिक्षा के लिए इस प्रकार प्रवेश प्राप्त कोई बालक, चौदह वर्ष की आयु के पश्चात् भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने तक नि:शुल्क शिक्षा का हकदार होगा।

अन्य विद्यालय में स्थानांतरण का अधिकार।

5.(1) जहाँ किसी विद्यालय में, प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने की व्यवस्था नहीं है वहाँ किसी बच्चे को, धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iii) और उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट विद्यालय को छोड़कर, अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए किसी अन्य विद्यालय में, स्थानांतरण कराने का अधिकार होगा।

(2) जहाँ किसी बच्चे से किसी राज्य के भीतर या बाहर किसी भी कारण से एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में जाने की अपेक्षा की जाती है, वहाँ ऐसे बच्चों को धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iii) और उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट विद्यालय को छोड़कर, अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए किसी अन्य विद्यालय में, स्थानांतरण कराने का अधिकार होगा।

(3) ऐसे अन्य विद्यालय में प्रवेश लेने के लिए उस विद्यालय का प्रधान अध्यापक या भारसाधक, जहाँ ऐसे बालक को अंतिम बार प्रवेश दिया गया था, तुरंत स्थानांतरण प्रमाणपत्र जारी करेगा:

परंतु स्थानांतरण प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने में विलंब, ऐसे अन्य विद्यालय में प्रवेश के लिए विलंब करने या प्रवेश से इंकार करने के लिए आधार नहीं होगा:

परंतु यह और कि स्थानांतरण प्रमाणपत्र जारी करने में विलंब करने वाले विद्यालय का प्रधान अध्यापक या भारसाधक, उसको लागू सेवा नियमों के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई के लिए दायी होगा/होगी।

अध्याय 3

समुचित सरकार, स्थानीय प्राधिकारी और माता-पिता के कर्तव्य

समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी का विद्यालय स्थापित करने का कर्तव्य।

6. इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी, इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की अवधि के भीतर ऐसे क्षेत्र या आस-पास की ऐसी सीमाओं के भीतर, जो विहित की जाएं। जहाँ विद्यालय इस प्रकार स्थापित नहीं है, एक विद्यालय स्थापित करेंगे।

वित्तीय और अन्य उत्तरदायित्वों में हिस्सा बंटाना।

7.(1) केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार पर इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए निधियाँ उपलब्ध कराने के लिए समवर्ती उत्तरदायित्व होगा।

(2) केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के

उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए पूंजी और आवर्ती व्यय के प्राक्कलन तैयार करेगी।

(3) केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों को राजस्वों के सहायता अनुदान के रूप में उपधारा (2) में निर्दिष्ट व्यय का ऐसा प्रतिशत उपलब्ध कराएगी, जैसा वह, समय-समय पर राज्य सरकारों के परामर्श से अवधारित करे।

(4) केंद्रीय सरकार, राष्ट्रपति को अनुच्छेद 280 के खंड (3) के उपखंड (घ) के अधीन राज्य सरकार को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता की परीक्षा करने के लिए वित्त आयोग को निर्देश देने का अनुरोध कर सकेगी, ताकि उक्त राज्य सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए निधियों का अपना अंश प्रदान कर सके।

(5) उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी, राज्य सरकार उपधारा (3) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकार को प्रदान की गई राशियों और उसके अन्य संसाधनों को ध्यान में रखते हुए इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए निधियाँ उपलब्ध कराने हेतु उत्तरदायी होगी।

(6) केंद्रीय सरकार,-

(क) धारा 29 के अधीन विनिर्दिष्ट शैक्षणिक प्राधिकारी की सहायता से राष्ट्रीय कार्यक्रम का ढांचा विकसित करेगी;

(ख) शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए मानकों को विकसित और लागू करेगी;

(ग) नवीकरण, अनुसंधान, योजना और क्षमता निर्माण के संवर्धन के लिए राज्य सरकार को तकनीकी सहायता और संसाधन उपलब्ध कराएगी।

समुचित सरकार के कर्तव्य

8. समुचित सरकार, -

(क) प्रत्येक बालक को निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराएगी:

परंतु जहाँ किसी बालक को, यथास्थिति, उसके माता-पिता या संरक्षक द्वारा, समुचित सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारवान् रूप से वित्तपोषित विद्यालय से भिन्न किसी विद्यालय में प्रवेश दिया जाता है, वहाँ ऐसा बालक या, यथास्थिति, उसके माता-पिता या संरक्षक ऐसे अन्य विद्यालय में बालक की प्राथमिक शिक्षा पर उपगत व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए कोई दावा करने का हकदार नहीं होगा।

स्पष्टीकरण- "अनिवार्य शिक्षा" पद से समुचित सरकार की,-

(i) छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु के प्रत्येक बालक को

नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने; और

(ii) छह वर्ष और चौदह वर्ष तक आयु के प्रत्येक बालक द्वारा प्राथमिक शिक्षा में अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और उसको पूरा करने को सुनिश्चित करने की, बाध्यता अभिप्रेत है;

(ख) धारा 6 में यथाविनिर्दिष्ट आस-पास में विद्यालय की उपलब्धता को सुनिश्चित करेगी;

(ग) यह सुनिश्चत करेगी कि दुर्बल वर्ग के बालक और अलाभित समूह के बालक के प्रति पक्षपात न किया जाए तथा किसी आधार पर प्राथमिक शिक्षा लेने और पूरा करने से वे निवारित न हों;

(घ) अवसंरचना, जिसके अंतर्गत विद्यालय भवन, शिक्षण कर्मचारीवृंद और शिक्षा के उपस्कर भी है, उपलब्ध कराएगी;

(ड.) धारा 4 में विनिर्दिष्ट विशेष प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराएगी;

(च) प्रत्येक बालक द्वारा प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश, उपस्थिति और उसे पूरा करने को सुनिश्चित और मॉनीटर करेगी;

(छ) अनुसूची में विनिर्दिष्ट मान और मानकों के अनुरूप अच्छी क्वालिटी की प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करेगी;

(ज) प्राथमिक शिक्षा के लिए पाठ्याचार और पाठ्यक्रमों का समय से विहित किया जाना सुनिश्चित करेगी; और

(झ) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराएगी।

स्थानीय प्राधिकारी के कर्तव्य

9. प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी,-

(क) प्रत्येक बालक को नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराएगा:

परंतु जहाँ किसी बालक को, यथास्थिति, उसके माता-पिता या संरक्षक द्वारा, समुचित सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारवान् रूप से वित्तपोषित विद्यालय से भिन्न किसी विद्यालय में प्रवेश दिया जाता है, वहाँ ऐसा बालक या, यथास्थिति, उसके माता-पिता या संरक्षक ऐसे अन्य विद्यालय में बालक की प्राथमिक शिक्षा पर उपगत व्यय कि प्रतिपूर्ति के लिए कोई दावा करने का हकदार नहीं होगा;

(ख) धारा 6 में यथाविनिर्दिष्ट आस-पास में विद्यालय की उपलब्धता को सुनिश्चित करेगा;

(ग) यह सुनिश्चित करेगा कि दुर्बल वर्ग के बालक और अलाभित समूह के बालक के प्रति पक्षपात न किया जाए तथा किसी आधार पर प्राथमिक शिक्षा लेने और पूरा करने से वे निवारित न हों;

(घ) अपनी अधिकारिता के भीतर निवास करने वाले चौदह वर्ष तक की आयु

के बालकों के ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, अभिलेख रखेगा;

(ङ) अपनी अधिकारिता के भीतर निवास करने वाले प्रत्येक बालक द्वारा प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश, उपस्थिति और उसे पूरा करने को सुनिश्चित और मॉनीटर करेगा;

(च) अवसंरचना, जिसके अंतर्गत विद्यालय भवन, शिक्षण कर्मचारीवृंद और शिक्षा सामग्री भी है, उपलब्ध कराएगा।

(छ) धारा 4 में विनिर्दिष्ट विशेष प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराएगा;

(ज) अनुसूची में विनिर्दिष्ट मान और मानकों के अनुरूप अच्छी क्वालिटी की प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करेगा;

(झ) प्राथमिक शिक्षा के लिए पाठ्याचार और पाठ्यक्रमों को समय से विहित किया जाना सुनिश्चित करेगा;

(ञ) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराएगा;

(ट) प्रवासी कुटुंबों के बालकों के प्रवेश को सुनिश्चित करेगा;

(ठ) अपनी अधिकारिता के भीतर विद्यालयों के कार्यकरण को मॉनीटर करेगा; और

(ड) शैक्षणिक कैलेंडर का विनिश्चय करेगा।

माता-पिता और संरक्षक का कर्तव्य

10. प्रत्येक माता-पिता या संरक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह आस-पास के विद्यालय में कोई प्रारंभिक शिक्षा के लिए अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपात्य का प्रवेश कराए या प्रवेश दिलाए।

समुचित सरकार द्वारा विद्यालय पूर्व शिक्षा के लिए व्यवस्था करना।

11. प्राथमिक शिक्षा के लिए तीन वर्ष से अधिक आयु के बालकों को तैयार करने तथा सभी बालकों के लिए जब तक वे छह वर्ष की आयु पूरी करते हैं, आरंभिक बाल्यकाल देखरेख और शिक्षा का व्यवस्था करने की दृष्टि से समुचित सरकार, ऐसे बालकों के लिए नि:शुल्क विद्यालय पूर्व शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक व्यवस्था कर सकेगी।

अध्याय 4
विद्यालयों और शिक्षकों के उत्तरदायित्व

नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए विद्यालय के उत्तरदायित्व की सीमा

12.(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए,-

(क) धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (i) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, उसमें प्रविष्ट सभी बालकों को नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करेगा;

(ख) धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, उसमें प्रवेश कराए गए बालकों के ऐसे अनुपात को, जो इस प्रकार प्राप्त उसकी वार्षिक आवर्ती सहायता या अनुदान का, उसके वार्षिक आवर्ती व्यय से है, न्यूनतम पच्चीस प्रतिशत के अधीन रहते हुए नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराएगा:

(ग) धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iii) और उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय पहली कक्षा में, आस-पास में दुर्बल वर्ग और अलाभित समूह के बालकों को, उस कक्षा के बच्चों की कुल संख्या के कम-से-कम पच्चीस प्रतिशत की सीमा तक प्रवेश देगा और नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, उसके पूरा होने तक, प्रदान करेगा:

परंतु यह और कि जहाँ धारा 2 के खंड (ढ) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, विद्यालय पूर्व शिक्षा देता है वहाँ खंड (क) से खंड (ग) के उपबंध ऐसी पूर्व शिक्षा में प्रवेश को लागू होंगे।

(2) उपधारा (1) के खंड (ग) में यथाविनिर्दिष्ट नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने वाले धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट विद्यालय की, उसके द्वारा इस प्रकार उपगत व्यय की, राज्य द्वारा उपगत प्रति बालक व्यय की सीमा तक या बालक से प्रभारित वास्तव रकम तक, इनमें से जो भी कम हो, ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, प्रतिपूर्ति की जाएगी:

परंतु ऐसी प्रतिपूर्ति धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (i) में विनिर्दिष्ट किसी विद्यालय द्वारा उपगत प्रति बालक व्यय से अधिक नहीं होगी:

परंतु यह और कि जहाँ ऐसा विद्यालय उसके द्वारा कोई भूमि, भवन, उपस्कर या अन्य सुविधाएं, या तो नि:शुल्क या रियायती दर पर, प्राप्त करने के पहले से ही विनिर्दिष्ट संख्या में बालकों को नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने की बाध्यता के अधीन है, वहाँ ऐसा विद्यालय ऐसी बाध्यता की सीमा तक प्रतिपूर्ति के लिए हकदार नहीं होगा।

(3) प्रत्येक विद्यालय ऐसी जानकारी जो, यथास्थिति, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा अपेक्षित हो, उपलब्ध कराएगा।

प्रवेश के लिए किसी प्रतिव्यक्ति फीस और अनुवीक्षण प्रक्रिया का न होना।

13.(1) कोई विद्यालय या व्यक्ति, किसी बालक को प्रवेश देते समय कोई प्रति व्यक्ति फीस संगृहीत नहीं करेगा और बालक या उसके माता-पिता अथवा संरक्षक को किसी अनुवीक्षण प्रक्रिया के अधीन नहीं रखेगा।

(2) कोई विद्यालय या व्यक्ति, यदि उपधारा (1) के उपबंधों के उल्लंघन में,-

(क) प्रति व्यक्ति फीस प्राप्त करता है तो वह जुर्माने से, जो प्रभारित प्रति व्यक्ति फीस के दस गुना तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा;

(ख) किसी बालक को अनुवीक्षण प्रक्रिया के अधीन रखता है तो वह जुर्माने से, जो पहले उल्लंघन के लिए पच्चीस हजार रुपए तक और प्रत्येक पश्चात्वर्ती उल्लंघन के लिए पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा।

प्रवेश के लिए आयु का सबूत

14.(1) प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश के प्रयोजनों के लिए किसी बालक की आयु, जन्म, मृत्यु और विवाह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1886 के उपबंधों के अनुसार जारी किए गए जन्म प्रमाणपत्र के आधार पर या ऐसे अन्य दस्तावेज के आधार पर, जो विहित किया जाए, अवधारित की जाएगी।

1986 का 6

(2) किसी बालक को, आयु का सबूत न होने के कारण किसी विद्यालय में प्रवेश से इंकार नही किया जाएगा।

प्रवेश से इंकार न किया जाना

15. किसी बालक को, शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ पर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो विहित की जाए, किसी विद्यालय में प्रवेश दिया जाएगा:

परंतु किसी बालक की प्रवेश से इंकार नहीं किया जाएगा यदि ऐसा प्रवेश विस्तारित अवधि के पश्चात् ईप्सित है:

परंतु यह और कि विस्तारित अवधि के पश्चात् प्रवेश प्राप्त कोई बालक ऐसी रीति में, जो समुचित सरकार द्वारा विहित की जाए, अपना अध्ययन पूरा करेगा।

रोकने और निष्कासन का प्रतिबंध

16. किसी विद्यालय में प्रवेश प्राप्त बालक को किसी कक्षा में नहीं रोका जाएगा या विद्यालय से प्राथमिक शिक्षा पूरी किए जाने तक निष्कासित नहीं किया जाएगा।

बालक के शारीरिक दंड और मानसिक उत्पीड़न का प्रतिषेध

17.(1) किसी बालक को शारीरिक दंड नहीं दिया जाएगा या उसका मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जाएगा।

(2) जो कोई उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, वह ऐसे व्यक्ति को लागू सेवा नियमों के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई का दायी होगा।

मान्यता प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किए बिना किसी विद्यालय का स्थापित न किया जाना।

18.(1) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी विद्यालय से भिन्न कोई विद्यालय, इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात्, ऐसे प्राधिकारी से, ऐसे प्रारूप में और ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, कोई आवेदन करके मान्यता प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किए बिना स्थापित नहीं किया जाएगा या कार्य नहीं करेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन विहित प्राधिकारी ऐसे प्रारूप में, ऐसे अवधि के भीतर, ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएँ, मान्यता प्रमाणपत्र जारी करेगा:

परंतु किसी विद्यालय को ऐसी मान्यता तब तक अनुदत्त नहीं की जाएगी जब

तक वह धारा 19 के अधीन विनिर्दिष्ट मान और मानकों को पूरा नहीं करता है।

(3) मान्यता की शर्तों के उल्लंघन पर, विहित प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा, मान्यता वापस ले लेगा:

परंतु ऐसे आदेश में आस-पास के उस विद्यालय के बारे में निर्देश होगा जिसमें गैर-मान्यताप्राप्त विद्यालय में अध्ययन कर रहे बालकों को प्रवेश दिया जाएगा:

परंतु यह और कि ऐसी मान्यता को ऐसे विद्यालय को, ऐसी रीति में जो विहित की जाए, सुनावाई का अवसर दिए बिना वापस नहीं लिया जाएगा।

(4) ऐसा विद्यालय, उपधारा (3) के अधीन मान्यता वापस लेने की तारीख से कार्य करना जारी नहीं रखेगा।

(5) कोई व्यक्ति, जो मान्यता प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किए बिना कोई विद्यालय स्थापित करता है या चलाता है या मान्यता वापस लेने के पश्चात् विद्यालय चलाना जारी रखता है, जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में जुर्माने से जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान ऐसा उल्लंघन जारी रहता है, दस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दायी होगा।

विद्यालय के मान और मानक

19.(1) किसी विद्यालय को, धारा 18 के अधीन तब तक स्थापित नहीं किया जाएगा, या मान्यता नहीं दी जाएगी जब तक वह अनुसूची में विनिर्दिष्ट मान और मानकों को पूरा नहीं करता है।

(2) जहाँ इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व स्थापित कोई विद्यालय अनुसूची में विनिर्दिष्ट मान और मानकों को पूरा नहीं करता है, वहाँ वह ऐसे प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के भीतर अपने खर्चे पर ऐसे मान और मानकों को पूरा करने के लिए कदम उठाएगा।

(3) जहाँ कोई विद्यालया, उपधारा (2) के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर मान और मानकों को पूरा करने में असफल रहता है, वहाँ धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन विहित प्राधिकारी, ऐसे विद्यालय को अनुदत्त मान्यता को उसकी उपधारा (3) के अधीन विनिर्दिष्ट रीति में वापस ले लेगा।

(4) कोई विद्यालय उपधारा (3) के अधीन मान्यता वापस लेने की तारीख से कार्य करना जारी नहीं रखेगा।

(5) कोई व्यक्ति, जो मान्यता वापस लेने के पश्चात् कोई विद्यालय चलाना जारी रखता है, जुर्माने से जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान उल्लंघन जारी रहता है, दस हजार रुपए के जुर्माने का दायी होगा।

अनुसूची का संशोधन करने की शक्ति

20. केंद्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा

अनुसूचना का, उस में किसी मान या मानक को जोड़कर या उससे उसका लोप करके संशोधन कर सकेगी।

विद्यालय प्रबंध समिति

21.(1) धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट किसी विद्यालय से भिन्न विद्यालय स्थानीय प्राधिकारी, ऐसे विद्यालय में प्रवेश प्राप्त बालकों के माता-पिता या संरक्षक और शिक्षकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों से मिलकर बनने वाली एक विद्यालय प्रबंध समिति का गठन करेगा:

परंतु ऐसे समिति के कम-से-कम तीन चौथाई सदस्य माता-पिता या संरक्षक होंगे:

परंतु यह और कि अलाभित समूह और दुर्बल वर्ग के बच्चों के माता-पिता या संरक्षकों को समानुपाती प्रतिनिधित्व दिया जाएगा:

परंतु यह भी कि ऐसी समिति के पचास प्रतिशत सदस्य स्त्रियाँ होंगी।

(2) विद्यालय प्रबंध समिति निम्नलिखित कृत्यों का पालन करेगी, अर्थात् :-

(क) विद्यालय के कार्यकारण को मॉनीटर करना;

(ख) विद्यालय विकास योजना तैयार करना और उसकी सिफारिश करना;

(ग) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी अथवा किसी अन्य स्त्रोत से प्राप्त अनुदानों के उपयोग को मॉनीटर करना; और

(घ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना, जो विहित किए जाएँ।

विद्यालय विकास योजना

22.(1) धारा 21 की उपधारा (1) के अधीन गठित प्रत्येक विद्यालय प्रबंध समिति ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, एक विद्यालय विकास योजना तैयार करेगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन इस प्रकार तैयार की गई विद्यालय विकास योजना, यथास्थिति, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली योजनाओं और दिए जाने वाले अनुदानों का आधार होगी।

शिक्षकों की नियुक्ति के लिए अर्हताएँ और सेवा के निबंधन और शर्तें

23.(1) कोई व्यक्ति, जिसके पास केंद्रीय सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, प्राधिकृत किसी शिक्षा प्राधिकारी द्वारा यथा अधिकथित न्यूनतम अर्हताएँ हैं, शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होगा।

(2) जहाँ किसी राज्य में अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम या उसमें प्रशिक्षण प्रदान करने वाली पर्याप्त संस्थाएं नहीं हैं या उपधारा (1) के अधीन यथा अधिकथित न्यूनतम अर्हताएँ रखने वाले शिक्षक पर्याप्त संख्या में नहीं हैं वहाँ केंद्रीय सरकार, यदि वह आवश्यक समझे, अधिसूचना द्वारा, शिक्षक के रुप में नियुक्ति के लिए अपेक्षित न्यूनतम अर्हताओं को पाँच वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के लिए शिथिल कर

सकेगी, जो उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए:

परंतु ऐसा कोई शिक्षक, जिसके पास इस अधिनियम के प्रारंभ पर उपधारा (1) के अधीन यथा अधिकथित न्यूनतम अर्हताएँ नहीं हैं, पाँच वर्ष की अवधि के भीतर ऐसी न्यूनतम अर्हताएँ अर्जित करेगा।

(3) शिक्षक को संदेय वेतन और भत्ते तथा उसके सेवा के निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएँ।

शिक्षकों के कर्तव्य और शिकायतों को दूर करना।

24.(1) धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त शिक्षक निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करेगा, अर्थात् :-

(क) विद्यालय में उपस्थिति होने में नियमितता और समय पालन;

(ख) धारा 29 की उपधारा (2) के उपबंधों के अनुसार पाठ्यक्रम संचालित करना और उसे पूरा करना;

(ग) विनिर्दिष्ट समय के भीतर संपूर्ण पाठ्यक्रम पूरा करना;

(घ) प्रत्येक बालक की शिक्षा ग्रहण करने के सामार्थ्य का निर्धारण करना और तद्नुसार यथा अपेक्षित अतिरिक्त शिक्षण, यदि कोई हो, जोड़ना;

(ङ) माता-पिता और संरक्षकों के साथ नियमित बैठकें करना और बालक के बारे में उपस्थिति में नियमितता, शिक्षा ग्रहण करने का सामार्थ्य, शिक्षण में की गई प्रगति और किसी अन्य सुसंगत जानकारी के बारे में उन्हें अवगत कराना; और

(च) ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करना, जो विहित किए जाएँ।

(2) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट कर्तव्यों के पालन में व्यतिक्रम करने वाला/वाली कोई शिक्षक/शिक्षिका, उसे लागू सेवा नियमों के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई के लिए दायी होगा/होगी:

परंतु ऐसी अनुशासनिक कार्रवाई करने से पूर्व ऐसे शिक्षक/ऐसी शिक्षिका को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा।

(3) शिक्षक की शिकायतों को, यदि कोई हों, ऐसी रीति में दूर किया जाएगा, जो विहित की जाए।

छात्र-शिक्षक अनुपात

25.(1) इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से छह मास के भीतर समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि प्रत्येक विद्यालय में छात्र-शिक्षक अनुपात अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गए अनुसार बनाए रखा जाए।

(2) उपधारा (1) के अधीन छात्र-शिक्षक अनुपात बनाए रखने के प्रयोजन के लिए किसी विद्यालय में तैनात किए गए किसी शिक्षक को किसी अन्य विद्यालय या

कार्यालय में सेवा नहीं करने दी जाएगी या धारा 27 में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों से भिन्न किसी गैर-शैक्षिक प्रयोजन के लिए अभिनियोजित नहीं किया जाएगा।

शिक्षकों की रिक्तियों का भरा जाना

26. नियुक्ति प्राधिकारी; समुचित सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उपलब्ध करवाई गई निधियों द्वारा भागत: वित्तपोषित किसी विद्यालय के संबंध में यह सुनिश्चित करेगा कि उसके नियंत्रणाधीन किसी विद्यालय में शिक्षक के रिक्त पद कुल स्वीकृत पद संख्या के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होंगे।

गैर-शिक्षक प्रयोजनों के लिए शिक्षकों को अभि-नियोजित किए जाने का प्रतिषेध

27. किसी शिक्षक को दस वर्षीय जनसंख्या जनगणना, आपदा राहत कर्तव्यों या, यथास्थिति स्थानीय प्राधिकारी या राज्य विधान-मंडलों या संसद् के निर्वाचनों से संबंधित कर्तव्यों से भिन्न किसी गैर-शैक्षिक प्रयोजनों के लिए अभिनियोजित नहीं किया जाएगा।

शिक्षक द्वारा प्राइवेट ट्यूशन का प्रतिषेध

28. कोई शिक्षक/शिक्षिका प्राइवेट ट्यूशन या प्राइवेट शिक्षण क्रियाकलाप में स्वयं को नहीं लगाएगा/लगाएगी।

अध्याय 5
प्रारंभिक शिक्षा का पाठ्यक्रम और उसका पूरा किया जाना।

29.(1) प्रारंभिक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम और उसकी मूल्यांकन प्रक्रिया समुचित सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किए जाने वाले शिक्षा प्राधिकारी द्वारा अधिकथित की जाएगी।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया

(2) शिक्षा प्राधिकारी, उपधारा (1) के अधीन पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया अधिकथित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखेगा, अर्थात् :-

(क) संविधान में प्रतिष्ठापित मूल्यों से अनुरूपता;

(ख) बालक का सर्वांगीण विकास;

(ग) बालक के ज्ञान, अंत:शक्ति, योग्यता का निर्माण करना;

(घ) पूर्णतम मात्रा तक शारीरिक और मानसिक योग्यताओं का विकास;

(ङ) बाल अनुकूल और बालकेंद्रित रीति में क्रियाकलापों, प्रकटीकरण और खोज के द्वारा शिक्षण;

(च) शिक्षा का माध्यम, जहाँ तक साध्य हो बालक की मातृभाषा में होगा;

(छ) बालक को भय, मानसिक अभिघात और चिंतामुक्त बनाना और बालक को स्वतंत्र रूप से मत व्यक्त करने में सहायता करना;

(ज) बालक के समझने की शक्ति और उसे उपयोग करने की

उसकी योग्यता का व्यापक और सतत मूल्यांकन।

परीक्षा और समापन प्रमाणपत्र।

30.(1) किसी बालक से प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक कोई बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

(2) प्रत्येक बालक को, जिसने अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर ली है, ऐसे प्रारूप और ऐसी रीति में, जो विहित की जाए एक प्रमाणपत्र दिया जाएगा।

अध्याय 6
बालकों के अधिकार का संरक्षण

बालक के शिक्षा के अधिकार को मॉनीटर करना।

31.(1) बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 की, यथास्थिति, धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग या धारा 17 के अधीन गठित राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग, उस अधिनियम के अधीन उन्हे समनुदेशित कृत्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कृत्यों का भी पालन करेगा, अर्थात् :-

(क) इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन उपबंधित अधिकारों के रक्षापायों की परीक्षा और पुनर्विलोकन करना और उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अध्युपायों की सिफारिश करना;

(ख) नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के बालक के अधिकार संबंधी परिवादों की जांच करना; और

(ग) उक्त बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम की धारा 15 और धारा 24 अधीन यथाउपबंधित आवश्यक उपाय करना।

(2) उक्त आयोगों को, उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के बालक के अधिकार से संबंधित किसी विषय में जांच करते समय वही शक्तियाँ होंगी, जो उक्त बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम की क्रमश: धारा 14 और धारा 24 के अधीन उन्हें समनुदेशित की गई हैं।

(3) जहाँ किसी राज्य में, राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग गठित नहीं किया गया है वहाँ समुचित सरकार उपधारा (1) के खंड (क) से खंड (ग) में विनिर्दिष्ट कृत्यों का पालन करने के प्रयोजन के लिए ऐसी रीति में और ऐसे निबंधनों और शर्तों के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएँ, ऐसे प्राधिकरण का गठन कर सकेगी।

शिकायतों को दूर करना।

32.(1) धारा 31 में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति, जिसे इस अधिनियम के अधीन किसी बालक के अधिकार के संबंध में कोई शिकायत है, अधिकारिता रखने वाले स्थानीय प्राधिकारी को लिखित में शिकायत कर सकेगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन शिकायत प्राप्त होने के पश्चात्, स्थानीय प्राधिकारी, संबंधित पक्षकारों को सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के पश्चात् मामले का तीन मास की अवधि के भीतर निपटारा करेगा।

(3) स्थानीय प्राधिकारी के विनिश्चय से व्यथित कोई व्यक्ति, यथास्थिति, राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग को या धारा 31 और उपधारा (3) के अधीन विहित प्राधिकारी को अपील कर सकेगा।

(4) उपधारा 3 के अधीन की गई अपील का विनिश्चय धारा 31 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन यथा उपबंधित, यथास्थिति राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग या धारा (3) के अधीन निहित प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा।

राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् का गठन।

33.(1) केंद्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् का गठन करेगी, जिसमें पंद्रह से अनधिक उतने सदस्य होंगे, जितने केंद्रीय सरकार आवश्यक समझे, जिनकी नियुक्ति प्रारंभिक शिक्षा और बाल विकास के क्षेत्र में ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से की जाएगी।

(2) राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के कृत्य अधिनियम के उपबंधों के प्रभावी रूप में कार्यान्वयन के संबंध में केंद्रीय सरकार को सलाह देना, होंगे।

(3) राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के सदस्यों के भत्ते और नियुक्ति के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो विहित की जाएँ।

राज्य सलाहकार परिषद् का गठन।

34.(1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, एक राज्य सलाहकार परिषद् का गठन करेगी, जिसमें पंद्रह से अनधिक उतने सदस्य होंगे, जितने राज्य सरकार आवश्यक समझे, जिनकी नियुक्ति प्रारंभिक शिक्षा और बाल विकास के क्षेत्र में ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से की जाएगी।

(2) राज्य सलाहकार परिषद् के कृत्य अधिनियम के उपबंधों के प्रभावी रूप में कार्यान्वयन के संबंध में राज्य सरकार को सलाहकार देना, होंगे।

(3) राज्य सलाहकार परिषद् के सदस्यों के भत्ते और नियुक्ति के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो विहित की जाएँ।

अध्याय 7
प्रकीर्ण

निर्देश जारी करने की शक्ति।

35.(1) केंद्रीय सरकार, यथास्थिति, समुचित सरकार या स्थानीय प्रधिकारी को ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेगी जो वह इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के प्रयोजनों के लिए ठीक समझे।

(2) समुचित सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी या विद्यालय प्रबंध समिति

को ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेगी और ऐसे निर्देश दे सकेगी, जो वह ठीक समझे।

(3) स्थानीय प्राधिकारी, इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के संबंध में विद्यालय प्रबंध समिति को ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकेगा और ऐसे निर्देश दे सकेगा, जो वह ठीक समझे।

अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी

36. धारा 13 की उपधारा (2), धारा 18 की उपधारा (5) और धारा 19 की उपधारा (5) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए कोई अभियोजन समुचित सरकार द्वारा, अधिसूचना द्वारा, इस निमित प्राधिकृत किसी अधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना संस्थित नहीं किया जाएगा।

सद्भाव पूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण।

37. इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किस बात के संबंध में कोई भी वाद, या अन्य विधिक कार्रवाही केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार, राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग, राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग, स्थानीय प्राधिकारी, विद्यालय प्रबंध समिति या किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी।

समुचित सरकार की नियम बनाने की शक्ति।

38.(1) समुचित सरकार, अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए अधिसूचना द्वारा नियम बना सकेगी।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात्:-

(क) धारा 4 के पहले परंतुक के अधीन विशेष प्रशिक्षण देने की रीति और उसकी समय-सीमा;

(ख) धारा 6 के अधीन किसी आस-पास के विद्यालय की स्थापना के लिए क्षेत्र या सीमाएँ;

(ग) धारा 9 के खंड (घ) के अधीन चौदह वर्ष तक की आयु के बालकों के अभिलेख रखे जाने की रीति;

(घ) धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन व्यय की प्रतिपूर्ति की रीति और सीमा;

(ङ) धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन बालक की आयु का अवधारण करने हेतु कोई अन्य दस्तावेज़;

(च) धारा 15 के अधीन प्रवेश लेने के लिए विस्तारित अवधि और यदि विस्तारित अवधि के पश्चात् प्रवेश लिया जाता है तो अध्ययन पूरा करने की रीति;

(छ) वह प्राधिकारी, प्रारूप और रीति, जिसको और जिसमें धारा 18 की

उपधारा (1) के अधीन मान्यता प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया जाएगा;

(ज) धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन मान्यता प्रमाणपत्र का प्रारूप, अवधि, उसे जारी करने की रीति और शर्तें;

(झ) धारा 18 की उपधारा (3) के दूसरे परंतुक के अधीन सुनवाई का अवसर करने की रीति;

(ञ) धारा 21 की उपधारा (2) के खंड (घ) के अधीन विद्यालय प्रबंध समिति द्वारा किए जाने वाले अन्य कृत्य;

(ट) धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन विद्यालय विकास योजना तैयार करने की रीति;

(ठ) धारा 23 की उपधारा (3) के अधीन शिक्षक का संदेय वेतन और भत्ते तथा उसकी सेवा के निबंधन और शर्तें;

(ड) धारा 24 की उपधारा (1) के खंड (च) के अधीन शिक्षक द्वारा पालन किए जाने वाले कर्तव्य;

(ढ) धारा 24 की उपधारा (3) के अधीन शिक्षकों की शिकायतों को दूर करने की रीति;

(ण) धारा 30 की उपधारा (2) के अधीन प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के लिए प्रमाणपत्र देने का प्रारूप और रीति;

(त) धारा 31 की उपधारा (3) के अधीन प्राधिकरण, उसके गठन की रीति और उसके निबंधन और शर्तें;

(थ) धारा 33 की उपधारा (3) के अधीन राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के सदस्यों के भत्ते और उनकी नियुक्ति के अन्य निबंधन और शर्तें;

(द) धारा 34 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सलाहकार परिषद् के सदस्यों को भत्ते और उनकी नियुक्ति के अन्य निबंधन और शर्तें

3. इस अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम और केंद्रीय सरकार द्वारा धारा 20 और धारा 23 के अधीन जारी प्रत्येक अधिसूचना, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा/रखी जाएगी। यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद में सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या अधिसूचना में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएँ तो

तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा/होगी। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएँ कि वह नियम या अधिसूचना नहीं बनाया/बनाई जानी चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा/जाएगी। किंतु नियम या अधिसूचना के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(4) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम या अधिसूचना बनाए/बनायी जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा/रखी जाएगी।

अनुसूची

(धारा 19 और धारा 25 देखिए)

विद्यालय के लिए मान और मानक

क्र.सं.	मद	मान और मानक	
1.	शिक्षकों की संख्या :		
	(क) पहली कक्षा से पांचवी कक्षा के लिए	प्रवेश किए गए बालक	शिक्षकों की संख्या
		साठ तक	दो
		इकसठ से नब्बे के मध्य	तीन
		इक्यानवे और एक सौ बीस के मध्य	चार
		एक सौ इक्कीस और दो सौ के मध्य	पांच
		एक सौ पचास बालकों से अधिक	पांच धन एक प्रधान अध्यापक
		दो सौ बालकों से अधिक	छात्र-शिक्षक अनुपात (प्रधान अध्यापक को छोड़कर) चालीस से अधिक नहीं होगा।
	(ख) छठी कक्षा से आठवीं कक्षा के लिए	(1) कम से कम प्रति कक्षा एक शिक्षक, इस प्रकार होगा कि निम्नलिखित प्रत्येक के लिए कम से कम एक शिक्षक हो-	
		(i) विज्ञान और गणित;	

		(ii) सामाजिक अध्ययन; (iii) भाषा। (2) प्रत्येक पैंतीस बालकों के लिए कम से कम एक शिक्षक। (3) जहां एक सौ से अधिक बालकों को प्रवेश दिया गया है वहां .... (i) एक पूर्णकालिक प्रधान अध्यापक; (ii) निम्नलिखित के लिए अंशकालिक शिक्षक... (अ) कला शिक्षा; (आ) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा; (इ) कार्य शिक्षा। (iii) भाषा।
2.	भवन	सभी मौसम वाले भवन, जिसमें निम्नलिखित होंगे – (i) प्रत्येक शिक्षक के लिए कम से कम एक कक्षा और एक कार्यालय-सह-भंडार-सह प्रधान अध्यापक कक्ष; (ii) बाधा मुक्त पहुंच; (iii) लड़कों और लड़कियों के लिए पृथक् शौचालय; (iv) सभी बालकों के लिए सुरक्षित और पर्याप्त पेय जल सुविधा; (v) जहां दोपहर का भोजन विद्यालय में पकाया जाता है, वहां एक रसोई; (vi) खेल का मैदान; (vii) सीमा दीवाल या बाड़ द्वारा विद्यालय भवन की सुरक्षा करने के लिए व्यवस्थाएं।
3.	एक शैक्षणिक वर्ष में कार्य दिवसों/शिक्षण घंटों की न्यूनतम संख्या	(i) पहली से पांचवी कक्षा के लिए दो सौ कार्य दिवस; (ii) छठी कक्षा से आठवीं कक्षा के लिए दो सौ बीस कार्य दिवस; (iii) पहली कक्षा से पांचवी कक्षा के लिए प्रति शैक्षणिक वर्ष आठ सौ शिक्षण घंटे; (iv) छठी कक्षा से आठवीं कक्षा के लिए प्रति शैक्षणिक वर्ष एक हजार शिक्षण घंटे।
4.	शिक्षक के लिए प्रति सप्ताह कार्य घंटों की न्यूनतम संख्या	पैंतालीस शिक्षण घंटे जिसके अंतर्गत तैयारी के घंटे भी हैं।

5.	अध्यापन शिक्षण उपस्कर	प्रत्येक कक्षा के लिए अपेक्षानुसार उपलब्ध कराए जाएंगे।
6.	पुस्तकालय	प्रत्येक विद्यालय में एक पुस्तकालय होगा, जिसमें समाचार पत्र, पत्रिकाएं और सभी विषयों पर पुस्तकें, जिनके अंतर्गत कहानी की पुस्तकें भी हैं, उपलब्ध होंगी।
7.	खेल सामग्री, खेल और क्रीड़ा उपस्कर	प्रत्येक कक्षा को अपेक्षानुसार उपलब्ध कराए जाएंगे।

राष्ट्रपति ने दि राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कम्पल्सरी एजुकेशन एक्ट, 2009 के उपरोक्त हिन्दी अनुवाद को राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 5 की उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन राजपत्र में प्रकाशित किए जाने के लिए प्राधिकृत कर दिया है।

The above translation in Hindi of the Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009 has been authorised by the President to be published in the Official Gazette under clause (*a*) of sub-section (*l*) of section 5 of the Official Languages Act, 1963.

सचिव, भारत सरकार

Secretary to the Government of India

आर्थिक सबलीकरण के स्त्री-विमर्श में शिक्षा की भूमिका एवं उत्तरदायित्व

शरद सिन्हा*
जितेंद्र कुमार लोढ़ा**

शिक्षा एवं स्त्री-विमर्श के संबंधों के विवेचन से यह सार निकलता है कि आज के स्त्री-विमर्श की सबसे बड़ी आवश्यकता है– उसका सर्वपक्षीय सबलीकरण होना। चूँकि शिक्षा सदैव से ही, सभी प्रकार के विकासों व सशक्तीकरणों की अधिष्ठात्री रही है। अतः महिला-संदर्भित आर्थिक-सबलीकरण की अवधारणा अपने विकास के लिए शिक्षा व शिक्षा जगत से किंचित भी परे नहीं हो सकती। क्योंकि स्त्री-जीवन के उत्पादकीय-पक्षों के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्त्री-जीवन के आर्थिक-उन्नयन हेतु शिक्षा के ज्ञानात्मक, कौशलात्मक एवं अभिवृत्त्यात्मक कार्य हमेशा की तरह आज भी इस दिशा के सबसे प्रभावशाली एवं समाधानीय विकल्प हैं। जिसका चयन करने से ही अर्थजगत में न केवल स्त्रीजन्य उत्पादकता को मान्यता मिलेगी, बल्कि उसके उत्पादन को, उसकी आय के संदर्भ में देखे जाने की प्रवृत्ति को भी बल मिलेगा। शायद इसीलिए भारत के प्रसिद्ध भविष्यशास्त्री प्रो. मैल्कम एस. आदिशेषैया का कहना एकदम समीचीन लगता है कि - *"चाहे किसी भी प्रकार की शिक्षा हो, वो परिवार व समाज के सूक्ष्म एवं व्यापक आर्थिक-परिवर्तनों, आर्थिक-समझ एवं आर्थिक-कौशलों का आधार है। अपने प्राथमिक एवं माध्यमिक स्वरूप में वो विद्यार्थियों में सामान्य व सम्यक् अभिवृत्तियों का तथा उच्च शिक्षा के स्वरूप में वो दक्षतापरक-कौशलों का विकास करके समाज में आवश्यक परिवर्तनों की समझ पैदा करती है।"* इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा आर्थिक परिवर्तनों, समझ व कौशलों का आधार है, जो अवांछित आर्थिक-परिवर्तनों से समाज को बचाती है तथा वांछित आर्थिक-परिवर्तन प्राप्त करने के लिए समाज को प्रशिक्षित करती है। इसलिए महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का पहलू भी अपने विकसित स्वरूप के लिए, शिक्षा से परे हो ही नहीं सकता। क्योंकि शिक्षा तो विकास की वो वाहिनीका है, जिसे किसी भी रास्ते में ले जाया जा सकता है, रास्ता हमें निर्धारित करना है, शिक्षा तो किसी भी रास्ते में बहने को तैयार है, क्यों न हम उसे महिला-अर्थोपार्जन की राह दिखा दें।

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, डी. ई. आर. पी. पी., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

** *विभागाध्यक्ष* (सेवारत-शिक्षा), बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गाँधी विद्या मंदिर, सरदारशहर, चूरू, राजस्थान

विषयपरक-पृष्ठभूमि

90 के दशक के बाद भारत में स्त्री-विमर्श के तहत् कई नए मुद्दों पर ज़ोरदार बहस की शुरूआत हुई है। जिसमें महिला-सशक्तीकरण के पुराने मुद्दे के साथ-साथ बाज़ारवाद, पर्यावरण, स्त्रियों के खिलाफ सांप्रदायिक एवं राज्य प्रयोजित हिंसा, लिंग-भेद युक्त शिक्षा-नीति इत्यादि प्रमुख हैं। स्त्री-विमर्श के तहत् आज तीन दशक पूर्व वाला दृष्टिकोण बदल चुका है। उस समय स्त्री-शरीर की स्वतंत्रता पर अधिक ज़ोर था। यद्यपि यह मुद्दा आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है, लेकिन इस समय इसे एक ढाँचागत समस्या के तौर पर देखा जाता है। महिला संदर्भित चिंतन में एक महत्वपूर्ण कदम यह भी है कि अब यह विमर्श एक आंदोलन व विचारधारा मात्र नहीं रह गया है, बल्कि एक ऐसे अकादमिक विषय के तौर पर उभरा है, जो एकांगी पुरुषवादी दृष्टिकोण को खारिज करते हुए, ऐसे सिद्धांतों की बात करता है, जिसमें पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों के अनुभव भी शामिल हों, ताकि विभिन्न विषयों पर एक सम्यक् दृष्टिकोण का निर्माण हो सके। इस विचार की पृष्ठभूमि में महिला-सशक्तीकरण से तात्पर्य महिलाओं का पुरुषों के समान वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता से है। भारत में महिला-सशक्तीकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं को सुधारना है।[1]

स्त्री-जीवन के निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए भारत में स्त्रियों की शिक्षा शुरू से ही बहस का विषय रही है। 21वीं सदी में औपनिवेशिक भारत में स्त्री-शिक्षा की विषय-वस्तु क्या हो? उसका स्वरूप, चरित्र कैसा हो? इन मुद्दों पर काफ़ी मत-मतांतर रहे। इन मत-मतांतरों के बावजूद स्त्री-शिक्षा के हिमायती तक भी इस बात पर सहमत रहे कि स्त्रियों की शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे वे आदर्श माँ-पत्नी की भूमिका ठीक ढँग से निभा सकें। शिक्षा द्वारा स्त्रियों में स्वतंत्र चेतना का विकास हो, इसका प्रयास आज भी अपनी चिर-परिचित आकाँक्षा के साथ अपेक्षित है। पाँचवीं पँचवर्षीय योजना तक स्त्री-शिक्षा का मूल उद्देश्य महिला शिक्षकों की ज़रूरतें पूरी करना था, जिसके कारण पाठ्यक्रम इस प्रकार तैयार किया गया, जो महिलाओं को गृहिणियों और नौकरीपेशा औरतों दोनों की भूमिकाओं के अनुकूल बना दे। स्त्री-शिक्षा के योजनागत व ढाँचागत प्रयासों के बावजूद भी, आज स्त्री-शिक्षा का विमर्श लैंगिक-असमानता के दृष्टिकोण को पूरी तरह से नहीं मिटा सका

1. सिंह, रजनी रंजन "*सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तीकरण की वास्तविकताएँ,*" परिप्रेक्ष्य, न्यूपा नयी दिल्ली, वर्ष 14, अंक 1, अप्रैल 2007, पृ. 33.

है। स्त्री-शिक्षा की महिला-सशक्तीकरण के पटल पर असफलता को स्त्री-संदर्भों की एक लेखिका ने अपने आलेख *"देखो-देखो उनकी उच्च-शिक्षा का उजाड़"* में बखूबी उजागर करते हुए लिखा है कि *"स्त्री-शिक्षा और स्त्री के लिए रोजगार की अहमियत को समाज और राज्य-व्यवस्था आज भी पूरी तरह से उसके स्वामी और परिवार के संदर्भ में बांटकर परखने के आदी हैं।"*[2]

शिक्षा का अधिकार विधेयक-2009 के लागू होने, शिक्षा में लैंगिक-असमानता मिटाने के अथक प्रयासों, महिला-सशक्तीकरण के विधिक उपायों के साथ-साथ महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के सादृश्य अनेक कार्यक्रमों की क्रियान्वितियों के बावजूद भी शिक्षा की चौखट में आज भी स्त्री-सशक्तीकरण में उसकी भूमिका व उत्तरदायित्वों के प्रश्न बाकी हैं। जो बात मुख्य व महत्वपूर्ण है, वो यह है कि शिक्षा की प्रक्रिया में महिलाओं को कितने किस्म के व कितने पुख्ता शैक्षिक-अनुभव उपलब्ध हो पाते हैं, ताकि उनमें आत्मविश्वास बढ़े, उनके कौशलों में इज़ाफ़ा हो, जिसके चलते वे अपना भविष्य गढ़ सकें और समाज के संचालन में बेहतर भागीदार बन सकें। इस संबंध में शिक्षाविद् कृष्ण कुमार का चिंतन एकदम समीचीन है कि *"स्त्रियों की कुशलताओं व निर्णयकर्ताओं के रूप में आर्थिक श्रमबल में भागीदारी की उनकी क्षमताओं को लेकर जो गहरी मानसिक बाधाएँ हैं, उन्हें लाँघा जाए, तभी जाकर हम महिला-सबलीकरण के मुद्दे को शिक्षा के पटल पर सही मायने में रेखांकित कर सकेंगे।"*[3]

शिक्षा व्यक्तिगत विकास की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें किसी का भविष्य गढ़ने में वयस्कों व बड़ों की अपेक्षाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। देखा जाता है कि माता-पिता व शिक्षक लड़कों की तुलना में लड़कियों से बहुत कम उम्मीदें रखते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया से मात्र इतनी उम्मीदें रखी जाती हैं कि समुदाय की अपेक्षाओं के अनुरूप लड़कियाँ विवाह के लिए आवश्यक योग्यताएँ पा लें। जब लड़कियाँ स्त्री के स्वरूप को धारण करती हैं, तब तक समाज की इन अपेक्षाओं को आत्मसात् कर चुकी होती हैं। उस समय ये अपेक्षाएँ ही उनके लिए मानसिक-अवरोध बन जाती हैं। ये अवरोध उनकी 'अस्मिता' की दृष्टि को रोकते हैं और यह भूख जगाते हैं कि उन्हें स्वयं अपना लक्ष्य चुनने की स्वतंत्रता नहीं है। स्त्रियों के संदर्भ में

2. सौरभ, सुमित "*स्त्री एक शब्द नहीं' है सिर्फ*", पुस्तक वार्ता, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र, वर्ष-5, अंक-19, जन.-फर. 2006, पृ. 26-27.
3. कुमार, कृष्ण, "*बालिका सशक्तीकरण में कमी क्या है*", शिक्षा-विमर्श, दिगंतर शिक्षा व खेलकूद समिति, जयपुर, वर्ष 10, अंक-3, मई-जून-2008, पृ. 17.

शिक्षा में ये अंतर्विरोध उतनी ही बड़ी चुनौती प्रस्तुत करते हैं, जितनी बड़ी चुनौती आधुनिक अर्थव्यवस्था में भागीदारी के लिए ज्ञान व कौशलों को अर्जित करना है। स्त्रियों की इन बाधाओं को पहचानने के बाद, उन्हें लाँघने में सक्षम बनाने का काम केवल बौद्धिक रूप से उत्तेजक एवं समानता के दर्शन पर आधारित गुणवत्तायुक्त शिक्षाशास्त्र ही कर सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महिला सशक्तीकरण के मुद्दे पर उसके निबल व सबल पक्ष के लिए शिक्षा नहीं, बल्कि शिक्षा के पैरोकार ज़िम्मेदार है। शिक्षा तो सर्वांगीण विकास का बीज तथा फूल दोनों है। इसलिए जब पैरोकार चाहेंगे, तब शिक्षा स्त्री-सापेक्ष हो जाएगी। दूसरा, लेकिन महत्वपूर्ण रास्ता यह है कि, क्यों न स्त्रियाँ स्वयं शिक्षा की पैरोकार बन जाएँ तथा अपने सबलीकरण के बीजों की स्वयं ही निराई व जुताई कर लें।

शिक्षा के आयोजनों व पाठ्यक्रमों में जब लैंगिक-असमानताओं के प्रति सावधानी बरती जाएगी, तब ही हम शिक्षा को समता, दक्षता एवं गुणवत्ता के पटल पर सही मायने में आँक सकेंगे। मौजूदा शिक्षा-नीति में स्त्री-शिक्षा को लेकर सांकेतिक न्यूनतावाद का दृष्टिकोण प्रचलित है। सांकेतिक न्यूनतावाद में छात्रवृत्ति प्रदान करना, बैंक में कुछ राशि प्रतिमाह जमा कराना, गणवश, साइकिलें, पाठ्यपुस्तकें एवं कंप्यूटर आदि बाँटने की प्रक्रिया शामिल है। यह सच है कि ऐसे प्रोत्साहन भी उनकी व्यक्तिगत क्षमता में इज़ाफ़ा करते हैं, लेकिन स्त्री-विमर्श अर्थात् लैंगिक रिश्तों के संदर्भ में शिक्षा व शैक्षिक नियोजन के समक्ष जो प्रकृति व व्यापकता है, उनसे निपटने के लिए ऐसे छोटे उपाय अपर्याप्त हैं। इसके लिए हमें स्त्रियों के सांस्कृतिक दमन एवं उनके शैक्षिक वचन की पृष्ठभूमियों को देखकर महिला सशक्तीकरण की व्यापक शैक्षिक संभावनाओं को तलाशना होगा, जिससे वे कौशलों से परिपूर्ण स्वयं निर्णयकर्ता के रूप में प्रतिस्थापित होकर, अपना सामाजिक व आर्थिक पक्ष इतना मजबूत बना लें कि शेष सभी भेदभाव उसके तेजस से स्वत: मिट जाए। ख़ैर, एक बात तो वर्तमान में स्त्री-विमर्श के पक्ष की है, वो यह है कि आज के शिक्षा के पैरोकारों ने, चाहे अस्पष्ट रूप से ही सही, यह तो स्वीकार कर लिया है कि महिला सशक्तीकरण की दरकार है।

शिक्षा की प्रकृति व मानव-जीवन में उसकी उपस्थिति के सरोकार अपने-आप में यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा एक विकासगामी मार्ग है, जिस पर चलकर आर्थिक-सबलीकरण ही क्या, मानव-जीवन की सभी शक्तियों के सबलीकरण को दिशा मिलती है। अपने समानतावादी एवं सर्वहितार्थ उपागम के चलते शिक्षा, स्त्रियों के कल्याण से कहीं भी परे नहीं हो सकती। विषय की गम्भीरता को समझते हुए आज हमें शिक्षा के माध्यम से स्त्रियों में अपने आर्थिक विकास की संवेदनाएँ, ज्ञान, प्रशिक्षण, कौशल,

दक्षता एवं निर्णय लेने की क्षमताओं के विकास के साथ-साथ उनमें अपने उत्पादकीय कार्यों की पहचान व मूल्यांकन की क्षमताओं को भी विकसित करना होगा। इस संबंध में प्रसिद्ध अर्थचिंतक टी.डब्ल्यू शुल्ज का यह कथन भी प्रासंगिक है कि *"आर्थिक-सशक्तीकरण के लक्ष्य में आपके पास सब साधन मौजूद हों लेकिन किसी व्यवसाय का तकनीकी ज्ञान तथा तद्नुरूप कौशल न हो, स्थानीय अर्थव्यवस्था का ज्ञान न हो, साक्षर न हों तो उत्पादन में कमी आना स्वाभाविक है।"*[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्र के आर्थिक-सुदृढ़ीकरण के साथ-साथ स्त्री-संदर्भित आर्थिक-सुदृढ़ीकरण की अवधारणा भी शिक्षा का ही फलन है। इसे यदि हम आज के व्यवहार में देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि आजकल की पढ़ी-लिखी, काम करने वाली आधुनिक युवतियाँ आर्थिक मामलों में ज़्यादा आत्मनिर्भर हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता महिलाओं को मानसिक गुलामी से मुक्त करने का सबसे श्रेष्ठ मार्ग है, जिसको पाने के लिए हैं हमें पहले शिक्षारूपी राजमार्ग पर चलना होगा....

महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम है। शिक्षा के फलदायी प्रक्रम से एक व्यक्ति-विशेष, समुदाय या राष्ट्र, स्वयं के आर्थिक विकास को सम्यक् दिशा प्रदान कर सकता है। यहाँ पर मद्रास विकास संस्थान के अध्यक्ष डॉ. मैल्कम एस. आदिशेषैया का कहना एकदम प्रासंगिक है कि *"किसी भी समाज में व्यापक व सूक्ष्म आर्थिक परिवर्तन लाने का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा है। यह गरीबी हटाने का एक प्रमुख साधन है। मानव-पूँजी निर्माण, जनशक्ति-नियोजन एवं आर्थिक बेहतरी में शिक्षा व उसके विभिन्न स्वरूपों का सबसे अधिक योगदान है।"*

स्त्री-जीवन के आर्थिक-सबलीकरण की निर्माण-प्रक्रिया में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अतः महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण का मतलब यह है कि स्त्रियों में न केवल अपने उत्पादकीय कार्यों से आर्थिक सक्षमता व अर्थ-अर्जनता का स्तर बढ़े, बल्कि उनकी उत्पादकता व रोजगार को उनके स्वयं के परिप्रेक्ष्य में मान्यता भी मिले। संसार भर में अर्थचिंतक शिक्षा को एक विनियोग तत्व मानते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा पर किया गया व्यय, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र को व्यापक आर्थिक लाभ पहुँचाता है, और यह व्यय यदि "आर्थिक-सबलीकरण के नारीवाद" पर किया जाए तो समाज को कई मायने में,

4. लोढ़ा, जितेन्द्र कुमार, "शिक्षा आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम", प्राइमरी शिक्षक, एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली, जुलाई 2002, पृ. 24.

कई गुना लाभ मिलेंगे। इसीलिए नई शिक्षा नीति-1986 व प्रोग्राम ऑफ एक्शन-1992 में स्त्री-सबलीकरण की दृष्टि से, शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा गया कि *"स्त्रियों की पदवी (Status) में मूल परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का उपयोग एक अभिकर्त्ता के रूप में किया जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्त्रियों के सशक्तीकरण की दृष्टि से सकारात्मक एवं मध्यस्थता वाली भूमिका होगी। साथ ही यह संकल्प लिया गया कि स्त्रियों की निरक्षरता के उन्मूलन को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।"*[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा द्वारा नारी-जगत में आर्थिक-संवेदनशीलता पर आधारित सुयोग्य, जागरूक एवं कौशलों से परिपूर्ण मातृशक्ति का उदय होगा, जो नियोजित ढँग से अपने विवेक, दायित्व-बोध, कौशल एवं ज्ञान का प्रयोग कर, न केवल अपने आर्थिक-सबलीकरण को सम्यक् दिशा दे पायेगी, बल्कि राष्ट्र के आर्थिक निर्माण में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर पायेगी। महिलाओं के जीवन सुधार अर्थात् सबलीकरण की दृष्टि से, बीजिंग (चीन) में 4 सितम्बर से 15 सितम्बर 1995 में आयोजित चतुर्थ महिला-संदर्भित विश्व सम्मेलन में गहन मंथन के बाद इस बात को स्वीकारा गया कि *"महिलाओं की उन्नति एवं सबलीकरण का मुख्य माध्यम व आधार तो शिक्षा एवं शिक्षातंत्र की मंशाएँ ही हैं।"* 1986 में विकास में महिलाओं की भूमिका पर प्रथम विश्व सर्वेक्षण किया गया। जिसके आँकड़ों से सिद्ध हुआ कि *"उत्पादकीय व विकास कार्यों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। भूमिका के इस ग्राफ में शिक्षित महिलाओं का योगदान उच्च भाव में पाया गया, साथ ही शिक्षा से वंचित महिलाओं में, अपने कार्यों के आर्थिक-मूल्यों का भान व लेखांकन का दृष्टिकोण न्यून देखा गया।"*[6] इस प्रकार यह निष्कर्ष अपने आप में महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण में शिक्षा की महती भूमिका को रेखांकित करता है। महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका, शिक्षा के महिला-विकास सापेक्ष उद्देश्यों एवं तद्नुरूप उसके कार्यों की सफल क्रियान्वितियों के दृष्टिकोणों में निहित है। शिक्षा द्वारा महिलाओं का आर्थिक-सशक्तीकरण, उसके द्वारा प्रदत्त ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्त्यात्मक दृष्टिकोण के सम्यक् स्वरूप का ही फलन है। अतः महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण में शिक्षा की भूमिका के विभिन्न पक्षों की महत्वपूर्ण बानगी को अग्रांकित आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।

5. अग्रवाल जे.सी., "रिसेंट डेवलपमेंट एण्ड ट्रेंड्स इन एजुकेशन", शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009, पृ. 178.
6. श्रीवास्तव, सुरेशलाल, "*विश्व मानवाधिकार और महिलाएँ*, विद्या मेघ, मेरठ, वर्ष-12, अंक-113, दिस.-2006, पृ. 6-7.

महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका के विभिन्न पक्ष

ज्ञानात्मक-पक्ष की भूमिका

समाधानीय दृष्टिकोण प्रदान करना

- कार्यक्षमता, कार्यदक्षता, वृत्तिक-कौशलों के व्यावहारिक व सैद्धांतिक पक्षों की जानकारी देना।
- विभिन्न प्रशिक्षण, रोजगारों, कार्य के अवसरों एवं अर्थ-सृजन की गतिविधियों की जानकारी देना।
- महिलाओं के उत्पादकीय कार्यों की पहचान व उसके मूल्यों की जानकारियों को प्रकट करना।
- महिला-उन्नति के अधिकारों, नियमों एवं विधिक दृष्टिकोणों की जानकारी प्रदान करना।
- अर्थ-योजनाओं में महिलागत-नियोजनों व आरक्षणों की जानकारी प्रदान करना।
- महिला आर्थिक-सबलीकरण के क्षेत्र की मानसिक व व्यवस्थापकीय बाधाओं की जानकारियों को प्रकट कर उनके विभिन्न विधाओं के योग्यतापरक ज्ञान व उनके विशिष्टीकरण को महिला संदर्भों में प्रबंधित करना।
- आर्थिक-सबलीकरण की विभिन्न सूचनाओं व स्रोतों की जानकारी प्रदान करना।
- स्वरोजगार के दृष्टिकोणों की जानकारी प्रदान करना।
- मीडिया आधारित जन जागरण के कार्यक्रमों को दिशा देना।

कौशलात्मक पक्ष की भूमिका

- नेतृत्व एवं निर्णयात्मक क्षमताओं का विकास करना।
- आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता के कौशलों का विकास करना।
- श्रेष्ठ अवसर एवं विकल्प चयन की योग्यता का विकास करना।
- विभिन्न विधाओं से संबंधित वृत्तिक कौशलों की दक्षता का विकास करना।
- साहसिकता का प्रशिक्षण प्रदान करना।
- स्वावलंबन की दक्षता का विकास करना।
- क्षमताओं को सामर्थ्य में बदलने की योग्यता का विकास करना।
- सहअस्तित्व एवं स्वयं-सहायता के कौशलों का विकास करना।

अभिवृत्त्यात्मक पक्ष की भूमिका

- लैंगिक संवेनदनशीलता के स्तर को बढ़ाना।
- आर्थिक-सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता के स्तर को बढ़ाना।
- पेशेवराना अंदाज़ व छवि को दिशा देना।
- आत्मसम्मान एवं आत्मनिर्भरता की भावनाओं को बढ़ाना।
- कार्यकुशलता व पूर्णता की धारणा में विश्वास पैदा करना।
- श्रम-साधना के विश्वास को बढ़ाना।
- कार्य की दशाओं के प्रति संवेदनशीलता के पर्यावरण को विकसित करना।
- आर्थिक-विकास व अवसरों के प्रति संवेदनशीलता के स्तर को बढ़ाना।
- अर्थ-अर्जन व सृजन की दूरदर्शिता को बढ़ाना।
- सबलीकरण के प्रयासों के प्रति संवेदनशीलता एवं तद्नुरूप योजनाओं का लाभ उठाने की अभिवृत्ति विकसित करना।

उपर्युक्त आरेख में वर्णित महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण के विभिन्न शैक्षिक-पक्षों को नियोजित व एकीकृत स्वरूप में लागू कर, तद्नुरूप क्रियात्मक-आयोजनों (Action Plan) को दिशा देकर ही हम महिला-सशक्तीकरण की अवधारणा को आज चतुर्दिक स्वरूप में प्राप्त कर सकते हैं, फिर जाकर हम यह कह सकते हैं कि *"किसी भी राष्ट्र की आत्मा, जिसका कोई इतिहास है, उसकी भाव-भाषा वहाँ की महिलाओं के विकास, प्रगति एवं समृद्धि में बोलती है। महिलाएँ समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। उनके आगे बढ़ने से देश आगे बढ़ता है, उनके रुक जाने या धीमा हो जाने से देश थम जाता है। समाज की व्यवस्था या अव्यवस्था, नागरिक दायित्वों एवं कौशलों की दृढ़ता या उपेक्षा, आत्मशक्ति की मजबूती या दुर्बलता जैसी संवेदनशील भावनाओं को नारी-शक्ति जैसा चाहे वैसा मोड़ दे सकती है। इसलिए नारी शक्ति का शिक्षित होना जरूरी है"*[7]...

आर्थिक सशक्तीकरण के स्त्री-विमर्श में शिक्षा का उत्तरदायित्व

आज भी स्त्री की उत्पादकता या आय को सहायक या पूरक के रूप में देखे जाने का नज़रिया प्रचलित है। अर्थ जगत में किसी प्रकार के लैंगिक-विभेद को मान्यता नहीं है, उसमें मानव को केवल उत्पादन का साधन या उसका स्वामी समझा जाता है। फिर चाहे वो पुरुष हो या स्त्री, जो साधन की भूमिका निभायेगा, वही उत्पादन में से हिस्सा या आय लेगा। आज की महिलाएँ विशेषकर भारत के संदर्भ में, राष्ट्र के उत्पादक-कार्यों में सक्रिय रूप से संलिप्त होने के बावजूद भी उन्हें न तो साधन के रूप में मान्यता मिली है, और न ही उन्हें अर्थ-स्वरूप में सम्यक् प्रतिफल मिलता हुआ दिखाई देता है। फलस्वरूप उनमें आर्थिक-निबलीकरण व परनिर्भरता की भावनाएँ विकसित हो जाती हैं, जो उनके आर्थिक-सशक्तीकरण में अवरोध का कार्य करती हैं। अतः इस दिशा में शिक्षा का प्रथम दायित्व यह है कि वो स्त्रियों को ऐसी शैक्षिक व्यवस्था एवं प्रावधान प्रदान करे, जिससे वे अपने भावी जीवन में न केवल अर्थोपार्जन की सशक्त-इकाई बनें, बल्कि साथ-ही-साथ उनके अर्थोपार्जन पर उनका स्वतंत्र अधिकार व मान्यता प्रदान करने का सामाजिक-पर्यावरण भी विकसित हो सके। जहाँ एक ओर आर्थिक स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता स्त्री-मुक्ति की कुँजी है, तो वहीं दूसरी ओर शिक्षा इस कुँजी की प्राप्ति का मार्ग है। इसलिए हमें नारी-शिक्षा के पारिवारिक सरोकारों से लेकर शासकीय शिक्षा-विभाग तक में इस दिशा की समुचित व्यवस्थाओं को देखना होगा। शिक्षा के पैरोकारों को आज यह भी देखना होगा कि नारी-शिक्षा मात्र नौकरी दिलाने में काम आने भर का जादू बनकर न रह जाए, बल्कि उसके साथ-साथ हमें समानता और एकता को नारी-जीवन के हर

7. *"इक्कीसवीं सदी होगी नारी सदी"*, अखण्ड ज्योति, मथुरा, अंक-2, वर्ष-75, फरवरी-2011, पृ. 5-6.

क्षेत्र में जोड़ने की व्यवस्था भी करनी पड़ेगी।

नारी के आर्थिक उत्थान के लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि नारी-जगत में शिक्षा का संवर्द्धन हो, क्योंकि शिक्षा जीवन के सभी क्षेत्रों के विकास की अधिष्ठात्री है। अत: महिलाओं की दृष्टि से समाज में व्याप्त भेदभावों को मिटाने एवं उनके आर्थिक-सबलीकरण की दृष्टि से शिक्षा, शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षक एवं शिक्षा के पैरोकारों से उन सभी दायित्व-पूर्तियों की अपेक्षा की जाती है, जो महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण के सभी संदर्भों की पूर्णता में सहायक बने। इस दृष्टि से अब नीति-निर्माताओं और शिक्षा देने वालों को यह सुनिश्चित करना होगा कि दमन के दुष्चक्र को तोड़ने वाली प्रक्रियाओं को, अब शिक्षा से ही शुरू करना है। ऐसा कर पाने के लिए वर्तमान शिक्षा में न केवल महिला-सशक्तीकरण के वातावरण की दरकार होगी, वरन् पाठ्यचर्या में उपलब्ध सभी विषयों व संदर्भों को समेटने वाले शिक्षण की व्यवस्था भी करनी पड़ेगी। अब तक स्त्री-शिक्षा के जो प्रयास हुए हैं, वो शुभ व सम्यक् हैं, हम उसके लिए कृत्-कृत्य भी हैं, लेकिन अभी भी शिक्षा से अपेक्षा है कि वो और उसके पैरोकार (जिसमें महिलाएँ भी शामिल हों) नारी-शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक-शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध करवाए, जिससे स्त्रियों में आर्थिक-स्वावलंबन को प्रबंधित किया जा सके। चूँकि शिक्षा की अवधारणा अपने सनातनी संदर्भ में, सदैव से ही समाज-सापेक्ष एवं उत्तरदायी-अभिकरण वाली भूमिका में रही है। इसी विचार-क्रम की पृष्ठभूमि में महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण की दृष्टि से शिक्षा के उत्तरदायी पहलू निम्न प्रकार हैं:

- महिलाओं के लिए पृथक् रूप से व्यावसायिक-पाठ्यक्रमों एवं व्यावसायिक-संस्थानों की जड़ स्तर पर प्रसार व स्थापना संबंधी व्यवस्थापकीय दायित्व।
- महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण के सभी सरोकारों को शिक्षा के माध्यम से प्रचारित व प्रसारित करने का दायित्व।
- शैक्षिक-संगठनों के माध्यम से महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करवाकर इस दिशा के महत्त्व व अभिवृत्ति को विकसित करने का दायित्व।
- विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों आदि में महिलाओं के आर्थिक-सबलीकरण के उन्नयन हेतु विशिष्ट वार्ताओं, रोजगार-मेलों एवं संगोष्ठियों आदि के अनिवार्य आयोजनों के प्रावधानों को सुनिश्चित करने का दायित्व।
- महिलाओं की उत्पादकता, उनके कार्यों एवं उनकी आय को अकादमिक मान्यता दिलवाने का दायित्व।
- सभी शैक्षिक विषयों एवं संकायों के पाठ्यक्रमों में महिलाओं की स्वावलंबनता से जुड़े मुद्दों को डिज़ाइन कर, समावेशित किया जाए।
- महिलाओं के आर्थिक-उन्नयन के विभिन्न अवसरों एवं कार्यक्रमों को न केवल डिज़ाइन

करना, बल्कि उसके प्रति चेतना को भी प्रबंधित करने का दायित्व।

- स्वावलंबी एवं उद्यमी महिलाओं के उदाहरणों को प्रेरक के रूप में शिक्षा-पाठ्यक्रमों में रेखांकित करवाना।
- महिलाओं में स्वरोजगार, जोखिम उठाने की क्षमता, वित्तीय-क्षेत्रों, उद्योग परियोजनाओं एवं स्थापना-प्रक्रियाओं आदि दृष्टिकोणों का आर्थिक-सशक्तीकरण की दृष्टि से अकादमिक नेतृत्व करना।
- स्त्री-शिक्षा के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों का संबंध जीवन व रोज़गार की चुनौतियों से जोड़ने का दायित्व।
- स्त्री-शिक्षा के शैक्षिक-कार्यक्रमों में व्यावसायिक-निर्देशन एवं परामर्श की अवधारणा को समावेशित कर, इसके व्यावहारिक दृष्टिकोण को भी प्रबंधित करने का दायित्व।

इस प्रकार प्रकट है कि उपर्युक्त दायित्व -निर्वहन की भूमिका अदा करके शिक्षा, 'नारीवाद के आर्थिक-सशक्तीकरण' को महत्वपूर्ण दिशा दे सकती है। क्योंकि हम जानते हैं कि शिक्षा यदि परिवर्तन का कारक है, तो साथ ही वह मानव समाज की दृष्टि से असम्यक् परिवर्तनों, विसंगतियों तथा बुराइयों को रोकने का प्रबल अभिकरण भी है। ऐसे में हम कह सकते हैं कि समानता के साथ महिला आर्थिक-सबलीकरण की अवधारणा को सिरे चढ़ाने का आधारभूत दायित्व शिक्षा का ही है।

निष्कर्ष

शिक्षा एवं स्त्री-विमर्श के संबंधों के विवेचन से यह सार निकलता है कि आज के स्त्री-विमर्श की सबसे बड़ी आवश्यकता है, उसका सर्वपक्षीय सबलीकरण होना। चूँकि शिक्षा सदैव से ही, सभी प्रकार के विकासों व सशक्तीकरणों की अधिष्ठात्री रही है। अतः महिला-संदर्भित आर्थिक-सबलीकरण की अवधारणा अपने विकास के लिए शिक्षा व शिक्षा जगत से किंचित भी परे नहीं हो सकती। क्योंकि स्त्री-जीवन के उत्पादकीय-पक्षों के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। स्त्री-जीवन के आर्थिक-उन्नयन हेतु शिक्षा के ज्ञानात्मक, कौशलात्मक एवं अभिवृत्त्यात्मक कार्य हमेशा की तरह आज भी इस दिशा के सबसे प्रभावशाली एवं समाधानशील विकल्प हैं। जिनका चयन करने से ही अर्थजगत में न केवल स्त्रीजन्य उत्पादकता को मान्यता मिलेगी, बल्कि उसके उत्पादन को, उसकी आय के संदर्भ में देखे जाने की प्रवृत्ति को भी बल मिलेगा। शायद इसीलिए ही भारत के प्रसिद्ध भविष्यशास्त्री प्रो. मैल्कम एस. आदिशेषैया का कहना एकदम समीचीन लगता है कि -*"चाहे किसी भी प्रकार की शिक्षा हो, वो परिवार व समाज के सूक्ष्म एवं व्यापक आर्थिक-परिवर्तनों, आर्थिक-समझ एवं आर्थिक-कौशलों का आधार है। अपने प्राथमिक एवं माध्यमिक स्वरूप में वो विद्यार्थियों में सामान्य व सम्यक् अभिवृत्तियों का तथा उच्च शिक्षा के स्वरूप में वो दक्षतापरक-कौशलों का विकास*

करके समाज में आवश्यक परिवर्तनों की समझ पैदा करती है।"[8] इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा आर्थिक परिवर्तनों, समझ व कौशलों का आधार है, जो अवांछित आर्थिक-परिवर्तनों से समाज को बचाती है तथा वांछित आर्थिक-परिवर्तन प्राप्त करने के लिए समाज को प्रशिक्षित करती है। इसलिए महिलाओं के आर्थिक-सशक्तीकरण का पहलू भी अपने विकसित स्वरूप के लिए, शिक्षा से परे हो ही नहीं सकता। क्योंकि शिक्षा तो विकास की वो वाहिनीका है, जिसे किसी भी रास्ते में ले जाया जा सकता है, रास्ता हमें निर्धारित करना है, शिक्षा तो किसी भी रास्ते में बहने को तैयार है, क्यों न हम उसे महिला-अर्थोपार्जन की राह दिखा दें.....

8. आदिशेषैया, मैल्कम एस., *"शिक्षा आर्थिक-परिवर्तन का सशक्त माध्यम"*, योजना, भारतीय सूचना प्रसारण मंत्रालय, नयी दिल्ली, वर्ष - 37, अंक 23-24, जनवरी 1994, पृ. 11-16.

प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत प्रशासन व्यवस्था की प्रभावशीलता का अध्ययन

सुषमा पाण्डेय*

प्राथमिक शिक्षा भारतीय शिक्षा व्यवस्था की नींव है। इसको सर्वव्यापक सर्वसुलभ एवं सार्वजनिक बनाने के लिए स्वतंत्रता के पश्चात से ही अनेक नीतिगत प्रयोग हुए हैं। विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था एवं सामुदायिक सहभागिता एक नवीन प्रयोग हैं जिसमें दूर-दराज़ के ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों को विभिन्न स्तर पर विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था से जोड़ते हुए जहाँ एक ओर केंद्र से जोड़ा गया वहीं दूसरी ओर ग्राम शिक्षा समिति, ब्लॉक शिक्षा समिति तथा जिला शिक्षा समिति को उत्तरदायी बनाते हुए समुदायों को विद्यालयों से जोड़ दिया गया है। यह आकलन करना आवश्यक है कि क्या प्राथमिक विद्यालयों को इस विकेंद्रीकृत प्रशासन व्यवस्था से उद्देश्यानुरूप सहयोग मिल रहा है? इसी उद्देश्य के आकलन हेतु इस अध्ययन को किया गया है।

बहुत पहले से ही भारत में शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न स्थानीय संस्थाएँ, व्यक्ति तथा समुदाय अपनी-अपनी सहभागिता निभाते रहे हैं। उपनिवेश काल से पहले शिक्षा ज़्यादातर मदरसों, टोलों तथा पाठशालाओं में दी जाती थी। इन संस्थाओं की व्यवस्था ज़मींदार अभिभावक अपने तरीके से करते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे लोकतंत्रात्मक जीवन-शैली की सफलता के लिए शिक्षा की महत्ता को स्वीकार किया गया और प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान दिया गया। भारतीय संविधान में यह संकल्प व्यक्त किया गया कि राज्य ऐसा प्रयास करें कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अंदर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को सार्वभौमिक अनिवार्य तथा नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध हो सके।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने अपनी अनुशंसाओं में विभिन्न स्तरों की शिक्षा के साथ-साथ प्राथमिक शिक्षा के व्यापक प्रसार पर बल दिया। इसें संस्थागत नियोजन, विद्यालय

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, शिक्षा संकाय, दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

संकुल जैसी योजनाओं तथा प्रभावी शिक्षण अधिगम, प्रभावी निरीक्षण, पर्यवेक्षण आदि के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के गुणवत्ता के संवर्धन पर बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में 14 वर्ष की उम्र तक अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने, त्रि-भाषा सूत्र लागू करने तथा उत्तम पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करने और शिक्षा प्राप्त करने को मौलिक अधिकार बनाने पर जोर दिया गया।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को सफल बनाने के लिए श्री बलवंतराय मेहता (1957) के प्रतिवेदन की संस्तुतियों को क्रियान्वित करने का निश्चय किया गया। समिति की संस्तुति थी कि *"स्थानीय निकायों को विभाग अथवा संविदाकार नहीं समझना चाहिए। यह ग्राम और क्षेत्रीय स्तर पर लोकप्रतिनिधियों की लोकतांत्रिक सरकार है।"* समिति की संस्तुति के अनुसार त्रिस्तरीय योजना का क्रियान्वयन 1960 में किया गया।

सन् 1971 तक प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था का दायित्व स्थानीय निकायों पर था। राज्य सरकार द्वारा उन्हें समस्त प्रकार की संभव सहायता एवं निर्देशन दिया जाता था परंतु ये निकाय अपने दायित्वों को पूरी तरह नहीं निभा सके। इसका प्रमुख कारण स्थानीय निकायों की स्थानीय प्रतिद्वंद्विता एवं गड़बड़ी थी। परिणामस्वरूप प्राथमिक स्कूलों का संचालन एवं अध्यापकों, छात्रों आदि को प्रदत्त सुविधाओं को भलीभाँति प्रदान नहीं किया जा सकता था। अत: ढाई लाख से अधिक शिक्षकों तथा डेढ़ करोड़ छात्र-छात्राओं की विशाल संख्या के कारण स्थानीय निकायों के समिति शासन तंत्र के लिए प्राथमिक विद्यालयों को सुचारु रूप से चलाना संभव न हो सका। इसलिए राज्य सरकार ने 1973 को एक अध्यादेश पारित कर प्राथमिक शिक्षा को सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया। इसी समय 1973 में बेसिक शिक्षा परिषद् का भी गठन किया गया।

भारत के संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम 1992 के द्वारा पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसी प्रकार संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा नगरीय क्षेत्र के स्थानीय प्रशासन तंत्र का भाग-10 अंत स्थापित किया गया। इन संशोधनों के आधार पर पंचायती राज व्यवस्था का त्रि-स्तरीय स्तर, ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत के रूप में लिया गया है।

सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा का तीव्र गति से विकास हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यालयों के संचालन एवं क्रियान्वयन के लिए अनुभव किया जाने लगा कि विकेंद्रीकरण किया जाए, जिससे किसी एक पर दायित्व न होकर सभी को उसके उत्तरदायित्व दे दिए जाएँ। इसलिए प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकरण की नीति अपनाई गई। प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकरण का मुख्य कारण यह था कि शैक्षिक विकेंद्रीकरण केंद्र से लेकर एक स्कूल तक जुड़े हों और समुदाय में भी प्राथमिक शिक्षा के प्रति जागरूकता आए। शैक्षिक प्रशासन एवं समुदाय मिलकर शिक्षा के

प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करें और स्थानीय स्तर पर शिक्षा व्यवस्था की बेहतर देख-रेख हो सके। इसलिए शैक्षिक प्रशासन को छोटी इकाइयों में विभाजित किया गया जिससे संपूर्ण प्राथमिक शिक्षा की देख-रेख हो सके।

विकेंद्रीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत अधिकारों और कार्यकलापों को केंद्र से हटाकर नीचे के स्तरों के निकायों/संगठनों को सौंपा जाता है। शिक्षा में नीति योजना, प्रबंधन और वित्त प्रबंधन ऐसे प्रमुख कार्य हैं जो, केंद्र, राज्य, नगर निगम या स्कूल स्तर पर अलग-अलग अधिकार के साथ सौंपे जा सकते हैं। विभिन्न देशों में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ अधिकार शक्ति तथा क्रियाकलापों को निर्धारित करती हैं। केंद्रीकरण के मैट्रिक्स ढाँचे के दो छोर हैं—एक छोर पर केंद्र है और दूसरे छोर पर स्कूल है। अगर नीति योजना, प्रबंधन और वित्त संबंधी निर्णय इनमें से किसी एक छोर पर केंद्रित होता है तो इन दो बिंदुओं के बीच विभिन्न स्तरों पर अधिकारों तथा क्रियाकलापों के प्रत्यायोजना और हस्तांतरण से शैक्षिक निर्णय लिए जा सकते हैं। विकेंद्रीकरण का एक महत्वपूर्ण स्वरूप यह हो सकता है कि शिक्षा नीति संबंधी प्रमुख निर्णय केंद्रीय स्तर तक लिए जाएँ जबकि योजना और प्रबंध संबंधी निर्णय जिला स्तर पर होता है।

जनपद स्तर पर प्राथमिक शैक्षिक प्रशासन का विकेंद्रीकरण

विद्यालयों के शिक्षकों की उन्नति के लिए देश में शिक्षा के पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक स्तरों में गुणात्मक सुधार के स्तर पर शोध कार्यों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में जिला स्तर पर एक ऐसी संस्था स्थापित करने की बात कही गई, जो जिले के अध्यापकों की व्यावसायिक उन्नति तथा विकास के लिए समुचित कार्य कर सके। इस संस्था को जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान कहा गया।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निर्धारित शिक्षा नीति के अधीन जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना का कार्य प्रारंभ हुआ। इन संस्थाओं की स्थापना का उद्देश्य प्राथमिक व प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में अपनाई गई विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को निचले स्तर पर सफलता के शैक्षिक सहयोग प्रदान करना था। पूरे भारत में अनुमानतः 633 डायट स्थापित हो चुके हैं, जो अपने दायित्वों की पूर्ति कर रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की विशेष भूमिका है। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के कार्य हैं—

- जिला स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- ब्लॉक संसाधन केंद्रों के समन्वयकों का शैक्षिक मार्गदर्शन करना।
- शिक्षकों के लिए सतत् तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- विद्यालय संकुलों तथा जिला बोर्डों को

सहयोग प्रदान करना।

- प्राथमिक विद्यालयों, उच्च प्राथमिक विद्यालय, अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए मूल्यांकन केंद्र के रूप में कार्य करना।
- शिक्षकों तथा अनुदेशकों के लिए साधन केंद्र के रूप में सेवाएँ उपलब्ध कराना।

बी.आर.सी. एवं एन.पी.आर.सी. की स्थापना की संकल्पना– कोठारी कमीशन की संस्तुतियों के आधार पर शिक्षकों को विद्यालय स्तर पर शैक्षिक सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए एक ऐसे सहयोगी की संकल्पना की गई जो अपने आप में एक संदर्भ व्यक्ति (रिसोर्स पर्सन) हो और उसका मुख्य कार्य कक्षा में पठन-पाठन के स्तर को सुधारने में सहायता पहुँचाना हो। प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु ये दोनों केंद्र जनपद स्तर पर स्थापित 'जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान' के मार्गदर्शन में क्रियाशील हैं।

विकास खण्ड संसाधन केंद्र – सभी के लिए शिक्षा परियोजना के अंतर्गत ब्लॉक संसाधन केंद्र को डायट के अनुरूप ब्लॉक स्तर पर बौद्धिक प्रकोष्ठ के रूप में विकसित किये जाने की योजना है। इसें एक समन्वयक एवं एक सह-समन्वयक का पद है। यह केंद्र विकास खण्ड स्तर पर शिक्षा की विभिन्न गतिविधियों के अंतर्गत विभिन्न प्रशिक्षण कार्यशालाओं एवं अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों तथा शिक्षणेत्तर क्रियाकलापों को आयोजित करेगा। विकास खण्ड में स्थित सभी पंचायत संदर्भ केंद्रों और सभी स्कूलों का शैक्षिक मार्गदर्शन करेगा।

ब्लॉक संसाधन केंद्र के प्रमुख दायित्व निम्नांकित हैं–

- सेवारत शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण एवं पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण आयोजित करना।
- शिक्षण को प्रभावी एवं रुचिपूर्ण बनाना तथा विद्यालयों में अनुभव की जाने वाली कठिनाईयों को दूर करने का प्रयास करना।
- बालिकाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़ी जाति के बच्चों के पंजीकरण में वृद्धि हेतु विशेष प्रयास करना।
- शैक्षिक मूल्यांकन और प्रगति की देख-रेख करना एवं सहयोग देना।
- इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के प्रयोग द्वारा शैक्षिक वातावरण का सृजन करना तथा अभिभावकों में चेतना जागृत करना।
- सूक्ष्म नियोजन, स्कूल मैपिंग तथा विद्यालय सुधार योजना के समस्त कार्यों में न्याय पंचायत संदर्भ केंद्रों को उचित मार्गदर्शन देना।

न्याय पंचायत संदर्भ केंद्र

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत शैक्षिक नियोजन एवं प्रबंधन के विकेंद्रीकरण की दिशा में विशेष कदम उठाए गए हैं। निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण कार्य को अधिक प्रभावी बनाने की दृष्टि से न्याय पंचायत स्तर पर न्याय पंचायत संदर्भ केंद्र परिकल्पित है। यह केंद्र पंचायत स्तर पर शैक्षिक एवं शिक्षणेत्तर कार्यक्रमों/ गतिविधियों का केंद्र होगा। इस केंद्र के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

- ब्लॉक संसाधन केंद्रों को अधिक प्रभावी

बनाने के लिए इनके द्वारा प्रदत्त प्रशिक्षण एवं विद्यालयी प्रभावकारिता का निरीक्षण करना और सुझाव एवं सहयोग प्रदान करना।

- अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों के अनुदेशकों तथा पर्यवेक्षण के लिए सेवापूर्व एवं सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- क्षेत्र के विद्यालयों का पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण करना।

शैक्षिक विकेंद्रीकरण की नीति को प्रभावी बनाने में न्याय पंचायत संदर्भ केंद्रों की भूमिका महत्वपूर्ण है, ये केंद्र छात्रों के नामांकन में वृद्धि का प्रयास करेंगे।

पंचायती राज की त्रि-स्तरीय व्यवस्था – उत्तर प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था की अवधारणा का आधुनिक रूप स्वतंत्रता के पूर्व अवस्था में भी देखने को मिलता है। वर्ष 1922 में ग्रामीण संस्थाएँ स्थापित करने के लिए अधिनियम पारित किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम 1947 मे पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया, जिसके प्रावधानों के अनुसार नवीन ग्राम पंचायतों की स्थापना की गई।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को सफल बनाने के लिए श्री बलवंत राय मेहता (1957) के प्रतिवेदन की संस्तुतियों को क्रियान्वित करने का निश्चय किया गया। समिति की संस्तुति थी कि *'स्थानीय निकायों को विभाग अथवा संविदाकार नहीं समझना चाहिए। यह ग्राम और क्षेत्रीय स्तर पर लोकप्रतिनिधियों की लोकतांत्रिक सरकार है।"* समिति की संस्तुतियों के अनुसार त्रि-स्तरीय योजना का क्रियान्वयन 1960 में किया गया। भारत के संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम 1992 के द्वारा पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इसी प्रकार संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा नगरीय क्षेत्र के स्थानीय प्रशासन तंत्र का भाग-10 अंतस्थापित किया गया। इन संशोधनों के आधार पर पंचायती राज व्यवस्था का त्रि-स्तरीय स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत के रूप में लिया गया है।

जिला बेसिक शिक्षा समिति– प्रत्येक जिले में ग्रामीण क्षेत्र के लिए एक समिति स्थापित की जाएगी जो जिला बेसिक शिक्षा समिति कहलाएगी। इसें जिला पंचायत अध्यक्ष, अध्यक्ष होते हैं। जिला बेसिक शिक्षा समिति परिषद के अधीक्षण और निर्देशों के अधीन रहते हुए निम्नलिखित कर्तव्यों और अधिकारों का संपादन करेगी–

- जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित स्कूलों का नियंत्रण।
- नए बेसिक स्कूल स्थापित करना, स्कूलों की स्थापना हेतु स्थान का चयन करना।
- बेसिक स्कूलों के विकास, प्रसार तथा सुधार के लिए योजनाएँ तैयार करना।
- विद्यालय विकास के लिए संसाधन एकत्र करना।
- ऐसे अन्य कार्यों को संपादित करना जो राज्य सरकारें समय-समय पर निर्देशित करें।

नगर बेसिक शिक्षा समिति– नगर बेसिक शिक्षा समिति प्रत्येक नगर निगम, नगरपालिका परिषद् एवं नगर पंचायतों के लिए एक समिति स्थापित की जाएगी जो नगर बेसिक शिक्षा समिति

कहलाएगी। नगर निगम का नगर प्रमुख अध्यक्ष होता है। समिति के निम्नलिखित अधिकार एवं कर्तव्य हैं–

- जिले के नगर पालिका स्थापित बेसिक स्कूलों पर नियंत्रण। बेसिक स्कूल विकास प्रसार तथा सुधार के लिए योजनाएँ तैयार करना।
- जिले के नगर क्षेत्र में बेसिक स्कूलों में शिक्षा संबंधित कार्यक्रमों का अनुश्रवण करना।
- शिक्षा में अभिवृद्धि के लिए और विशेषत: बेसिक स्कूलों में विद्यार्थियों के नामांकन उपस्थिति के लिए सुझाव देना।
- समिति के सदस्य सचिव बैठकों के कार्यावृत्त शिक्षा निदेशक (बेसिक) के माध्यम से शासन को प्रस्तुत करेंगे।

खण्डस्तरीय शिक्षा समिति– प्रत्येक खण्ड स्तर पर खण्डस्तरीय शिक्षा समिति का गठन किया जाएगा जिसके अध्यक्ष क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष होंगे। खण्डस्तरीय शिक्षा समिति के निम्नलिखित अधिकार एवं कर्तव्य हैं–

- खण्डस्तरीय शिक्षा समिति जिला बेसिक शिक्षा समिति के नियंत्रण में कार्य करेगी।
- जिला बेसिक शिक्षा समिति को सामान्यतया खण्ड में शिक्षा की अभिवृद्धि के लिए और विशेष बेसिक स्कूलों में विद्यार्थियों के नामांकन के लिए सुझाव देना।
- बेसिक स्कूलों में शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों और योजनाओं के कार्यांवयन का अनुश्रवण करना।
- विकास खण्ड स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रमों का अन्य कार्यक्रमों के साथ समन्वय करना।
- ऐसे अन्य कार्यों को संपादित करना जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर निर्देशित हों।
- समिति के सदस्य/सचिव बैठकों के कार्यवृत्ति को जिला बेसिक शिक्षा समिति के माध्यम से शिक्षा निदेशक (बेसिक) को प्रेषित करना।

ग्राम शिक्षा समिति– ग्राम शिक्षा समिति, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 की धारा (11) (1) के प्रावधानों को दृष्टिगत् रखते हुए ग्रामीण शिक्षा समिति का गठन किया गया है, जिसका अध्यक्ष ग्राम पंचायत का प्रधान होता है। ग्राम शिक्षा समिति के निम्नलिखित अधिकार एवं कर्तव्य हैं–

- ग्राम शिक्षा समिति खण्डस्तरीय शिक्षा समिति एवं जिला बेसिक शिक्षा समिति के नियंत्रण में कार्य करेगी।
- बेसिक स्कूलों को आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराने में सहायता देना।
- बेसिक स्कूलों के संचालन में सहायता करना।
- नए बेसिक स्कूल स्थापित करना तथा उनका भवन निर्माण/भवन मरम्मत कराना।
- स्कूल मैपिंग व माइक्रोप्लानिंग अभ्यास के आधार पर ग्राम के लिए शिक्षा योजना का निर्माण तथा क्रियान्वयन करना।
- समिति के सदस्य/सचिव बैठकों, कार्यवृत्त को खण्डस्तरीय शिक्षा समिति/जिला बेसिक शिक्षा समिति के माध्यम से शिक्षा निदेशक (बेसिक) को प्रस्तुत करेंगे।

विकेंद्रीकरण व्यवस्था एक वृहद् लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया गया है। आवश्यकता इस बात के आकलन की है कि वास्तव में विकेंद्रीकरण व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा को लाभ हुआ है? ये किस प्रकार से एक-दूसरे से समन्वय स्थापित करती हैं और एकीकृत रूप से कार्य करने में क्या समस्याएँ प्रकट हुई हैं? इन संस्थाओं को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है?

समस्या कथन – चयनित समस्या को निम्न रूप में परिभाषित किया गया–

प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था के प्रभावशीलता का अध्ययन

अध्ययन का उद्देश्य– प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है-

- जनपद स्तर पर शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण से प्राथमिक विद्यालयों के वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन।
- जनपदीय विकेंद्रीकरण व्यवस्था से संबंधित व्यक्तियों का व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करना।
- जनपदीय शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण से संबंधित समस्याओं एवं कठिनाईयों को ज्ञात करना।

परिकल्पना–उपर्युक्त उद्देश्यों के संदर्भ में निम्नलिखित परिकल्पना निर्मित की गई है–

- विकेंद्रीकरण व्यवस्था से प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण पर सार्थक प्रभाव पड़ा।
- जनपदीय शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण व्यवस्था से संबंधित व्यक्तियों के दृष्टिकोण सकारात्मक हैं।
- प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत व्यवस्था के प्रभावशीलता को अनेक समस्याएँ अवरुद्ध कर रही हैं।

परिसीमन– इस अध्ययन में शोधकर्त्री ने निम्न रूप से सीमाबद्ध किया है–

- प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य से ही संबंधित है।
- इस अध्ययन में जिला स्तर पर प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकरण से संबंधित विभिन्न इकाइयों एवं समितियों के मिले-जुले कार्यों का प्राथमिक शिक्षा के शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव का आकलन किया जाएगा।

अध्ययन विधि–उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शोधकर्त्री द्वारा सर्वप्रथम उपलब्ध शोध विधियों का अध्ययन किया गया। अध्ययन करने पर यह पाया गया कि प्रस्तुत शोध के लिए सर्वेक्षण विधि ही सर्वाधिक उपयुक्त है।

न्यादर्श–उत्तर प्रदेश में संपूर्ण जिलों की एक सूची तैयार कर ली गई और क्रमिक न्यादर्श विधि का चयन करते हुए 10% जनपदों को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया। सूची में से हर 5वें जनपद का चयन कर लिया गया अर्थात् 10% जनपदों का चयन करते हुए 7 जनपदों को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया। 20% विद्यालयों को 'साधारण अनियमित न्यादर्श विधि' का प्रयोग करते हुए चयन कर लिया गया। न्यादर्श के चयन हेतु विशेष ध्यान रखा गया कि संपूर्ण जनसंख्या में से शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जनपदों को भी न्यादर्श में पूर्ण प्रतिनिधित्व मिले।

तालिका -1
चयनित न्यादर्श में स्थानीय निकाय

जिला	जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान	जिला बेसिक शिक्षा समिति	नगर बेसिक शिक्षा समिति	खण्डीय बेसिक शिक्षा समिति	ग्राम शिक्षा समिति	विद्यालयों की संख्या	शिक्षकों की संख्या
7	7	7	7	49	502	1008	1500
20%			20%				

अध्ययन हेतु उपकरणों का निर्माण– शोध समस्या के अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के संकलन हेतु आवश्यक उपकरणों का चयन करने के लिए शोधकर्त्री द्वारा उपलब्ध उपकरणों का सर्वेक्षण किया गया, परंतु शोधकर्त्री के संज्ञान में ऐसा कोई भी उपलब्ध उपकरण नहीं आया जो प्रस्तुत शोध हेतु प्रयोग में लाया जा सके। अत: शोधकर्त्री ने स्वयं ही मापन उपकरणों का निर्माण किया है।

- प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण का शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव से संबंधित मूल्यांकन प्रपत्र।
- जनपदीय शिक्षा के विकेंद्रीकरण व्यवस्था की समस्याओं से संबंधित व्यक्तियों की साक्षात्कार अनुसूची।

प्राप्त परिणाम–स्वयं निर्मित उपकरणों पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया गया और परिणामों को उद्देश्यों के अनुरूप व्यवस्थित कर नीचे प्रस्तुत किया गया है–

परिकल्पना–1. प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण व्यवस्था का विद्यालयी वातावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

इस शोध का एक प्रमुख उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण का शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना है। इसें प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण के अंतर्गत नामांकन, ठहराव, नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों का वितरण, छात्रवृत्ति वितरण, मिड-डे-मील योजना के क्रियान्वयन में संपूर्ण विकेंद्रीकृत व्यवस्था के उत्तरदायित्व का आकलन किया गया है।

उपर्युक्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर शोधकर्त्री द्वारा न्यादर्श में चयनित 1008 विद्यालयों में 1500 शिक्षकों एवं जिला स्तर पर विकेंद्रीकृत शासन व्यवस्था से जुड़े उत्तरदायी सदस्यों पर प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण का शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव से संबंधित मूल्यांकन प्रपत्र को प्रशासित किया गया है। इससे प्राप्त परिणामों को तालिका-2 में बिंदुवार दिया जा रहा है-

तालिका-2

प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण का शैक्षिक वातावरण पर प्रभाव से संबंधित मूल्यांकन प्रपत्र पर प्राप्त परिणाम

क्र.सं.	कथन		प्रतिक्रिया	
		हाँ (%)	नहीं (%)	अनिश्चित (%)
1.	सरकार की नीतियाँ विद्यार्थियों को विद्यालय लाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं।	90	7	3
2.	विद्यालय विकास के कार्यों में सभी समितियाँ सहयोग प्रदान कर रही हैं।	70.2	29	8
3.	प्राथमिक विद्यालय के संचालन में ग्राम शिक्षा समिति सहयोग प्रदान करती है।	68	26	6
4.	बेसिक स्कूलों के विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ाए जाने के संबंध में सभी समितियाँ सुझाव दे रही हैं।	63	35	2
5.	विद्यार्थियों के अनुपात में शिक्षकों का अनुपात कम होने के कारण पठन-पाठन में बाधा उत्पन्न हो रही है।	95	5	0
6.	पाठ्यपुस्तकों का वितरण छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहा है।	96	4	0
7.	छात्रवृत्ति वितरण का लाभ विद्यालय के छात्रों को हो रहा है जिससे विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है।	90	9	1
8.	निःशुल्क पाठ्यपुस्तकों के वितरण से विद्यार्थियों में विद्यालय आने के प्रति रुचि बढ़ रही है।	85.0	12.1	2.9
9.	सुविधाएँ प्रदान करने में शिक्षकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।	62	38	0
10.	डायट अपवंचित वर्ग के बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य कर रही है।	66.9	27.6	5.5
11.	डायट विकलांग बच्चों के लिए विशेष शिक्षा की व्याख्या कर रही है।	59.5	35.7	4.8

12.	डायट में शिक्षण सामग्री की अनुपलब्धता के कारण इसका प्रभाव प्रशिक्षणार्थियों पर पड़ रहा है।	72.3	21.4	6.3
13.	डायट को भी समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संचालन में कठिनाई हो रही है।	64	34	2
14.	शिक्षकों को भी समय-समय पर प्रशिक्षण की आवश्यकता है।	74.7	4.52	20.8
15.	बी.आर.सी. द्वारा प्राथमिक विद्यालयों में समय-समय पर शिक्षण सामग्री उपलब्ध न होने के कारण शिक्षकों को पठन-पाठन में कठिनाई हो रही है।	78.5	20.0	1.5
16.	प्राथमिक विद्यालयों के कार्यों का मूल्यांकन एवं निरीक्षण समय से नहीं हो पा रहा है।	69	31	0
17.	ग्राम शिक्षा समिति प्राथमिक विद्यालयों के वातावरण को सरस एवं व्यावहारिक बना रही है।	55	45	0
18.	बी.आर.सी. पाठ्यपुस्तकों के वितरण में सहयोग प्रदान करती है।	88.8	10.9	0.3
19.	एन.पी.आर.सी. पाठ्यपुस्तकों के वितरण में सहयोग प्रदान करती है।	90.0	9.5	0.5
20.	ग्राम प्रधान द्वारा मिड-डे मिल योजना में सहयोग प्रदान किया जाता है।	77	22	1
21.	ग्राम प्रधान द्वारा मिड-डे मिल योजना के अंतर्गत शिक्षकों को भोजन सामग्री उपलब्ध करवाई जाती है।	71	19	10
22.	शिक्षकों पर अन्य कार्यों का भार होने के कारण उनकी पठन-पाठन में रुचि कम हो रही है।	76.6	21.4	2.0
23.	प्रधानों का शिक्षकों के ऊपर नियंत्रण होने से अध्यापक वर्ग के असंतुष्ट होने का प्रभाव शिक्षा पर पड़ रहा है।	58	40	2
24.	शिक्षण अधिगम सामग्री के द्वारा अध्यापकों को शिक्षण हेतु सामग्री के निर्माण में सहायता मिल रही है ।	81	9	10

25.	तैयार भोजन योजना के अंतर्गत शिक्षकों का ज्यादा समय इसकी व्यवस्था एवं देख-रेख में लगने से इसका प्रभाव शिक्षा पर पड़ रहा है।	85.7	12.8	1.5
26.	तैयार भोजन से छात्र वर्ग लाभान्वित हो रहे हैं।	92	08	0
27.	मध्याह्न भोजन योजना द्वारा विद्यालयों में पका-पकाया भोजन देने के प्रावधान से विद्यालय के पठन-पाठन के वातावरण में बाधा उत्पन्न हो रही है ।	84.4	13.09	2.6
28.	शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को पर्यावरणीय शिक्षा की जानकारी दी जा रही है।	80	20.0	0
29.	शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का प्रभाव विद्यालय पर पड़ रहा है।	82.3	15.7	2.0
30.	विशिष्ट बालकों की शिक्षा पर शिक्षकों में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस हो रही है ।	81.3	14.7	4.0
31.	विद्यालयों में छात्रों को खेल माध्यम से शिक्षा रुचिकर हो रही है।	82.6	14.04	3.4
32.	बालिका शिक्षा बढ़ाए जाने हेतु शिक्षा दी जा रही है।	89	11	0
33.	शासन द्वारा विभिन्न मदों, शिक्षकों और विद्यालयों को अनुदान उपलब्ध है।	80.4	17.8	1.8
34.	महिला सामाख्या कार्यक्रम का प्रभाव स्कूलों में बढ़ती हुई उपस्थिति के रूप में दिखाई दे रहा है।	70	23	7
35.	सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव स्कूलों में बढ़ती हुई उपस्थिति के रूप में दिखाई दे रहा है।	83.3	13.57	3.2
36.	अभिभावक वर्ग शिक्षा के प्रति जागरूक हो रहे हैं।	77.6	19.7	2.7
37.	छात्रों को दी जाने वाली सुविधाओं से प्राथमिक विद्यालय के प्रति अभिभावकों का आकर्षण बढ़ा है।	8.2	18.3	1.5
38.	प्राथमिक विद्यालयों के प्रति सामुदायिक जन सहभागिता बढ़ रही है।	71	29	0
39.	प्राथमिक शिक्षा में सुधार हो रहा है।	100	0	0

40.	संस्थाएँ एवं समितियाँ आपस में सामंजस्य प्रदान कर रही हैं।	45	55	0
41.	स्थानीय समितियाँ प्राथमिक शिक्षा के संचालन में सहयोग प्रदान कर रही हैं।	100	0	0
42.	स्थानीय निकायों के कार्यों में अन्य इकाइयों का हस्तक्षेप हो रहा है।	50	38	12
43.	उत्तरदायित्वों का सुचारू रूप से निर्वहन हो रहा है।	55	43	2
44.	छात्रों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य हो रहा है।	75	9	16
45.	अनिवार्य शिक्षा लक्ष्य को प्राप्त हो रही है।	72	20	8
46.	विद्यालयों का मूल्यांकन एवं निरीक्षण हो रहा है।	91	9	0
47.	उपस्थिति बढ़ाए जाने के संबंध में सुझावों को प्रस्तुत किया जा रहा है।	84	6	10
48.	प्राथमिक शिक्षा से जुड़े सभी लक्ष्यों की प्राप्ति हो रही है।	81	9	10

व्याख्या – प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण प्रतिशत ज्ञात करके किया गया है। परिणामों की व्याख्या बिंदुवार दी जा रही है–

- 91.1% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शासन की नीतियाँ विद्यार्थियों को स्कूल लाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं तथा 6.4% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शासन की नीतियाँ छात्रों को स्कूल लाने में सहायक सिद्ध नहीं हो रही हैं। वर्तमान में लगभग दो करोड़ से अधिक 6–14 वर्ष की आयु के बच्चे विद्यालयी शिक्षा से वंचित हैं।
- 70.2% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ये सभी समितियाँ विद्यालय के विकास के कार्यों में सहयोग प्रदान कर रही हैं तथा 26.9% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ये समितियाँ विद्यालय विकास के कार्यों में पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं कर रही हैं।
- 65.7% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम शिक्षा समिति द्वारा प्राथमिक विद्यालय के संचालन में सहायता प्रदान की जा रही है तथा 26.9% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम शिक्षा समिति द्वारा प्राथमिक विद्यालय के संचालन में सहयोग नहीं दिया जा रहा है तथा 7.4% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने अनिश्चितता प्रकट की है।
- 62.6% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ये समिति बेसिक स्कूलों के विद्यार्थियों की उपस्थिति बढ़ाए जाने के संबंध में सुझाव दे

रही है। मिड-डे-मील योजना एवं छात्रवृत्ति वितरण से उपस्थिति बढ़ी है तथा 35% शिक्षकों एवं अधिकारियों के द्वारा ये समिति बेसिक स्कूलों में उपस्थिति बढ़ाए जाने के संबंध में सुझाव नहीं दे रही है।

- 94% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यार्थियों के अनुपात में शिक्षकों का अनुपात कम होने के कारण पठन-पाठन में बाधा उत्पन्न होती है। किसी-किसी विद्यालय में छात्र संख्या ज़्यादा है और शिक्षकों की संख्या कम है। इसका प्रभाव पठन-पाठन पर पड़ रहा है तथा 6% शिक्षकों के अनुसार इसका प्रभाव पठन-पाठन पर नहीं पड़ रहा है।
- 95% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार पाठ्यपुस्तकों का वितरण छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहा है तथा 5% शिक्षकों के अनुसार पाठ्यपुस्तकों का वितरण छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा है।
- 89% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार छात्रवृत्ति प्रवेश हेतु आकर्षण पैदा कर रही है। परिषदीय विद्यालयों में 6-14 वर्ष की आयु के विद्यार्थी विद्यालयी सुविधाओं से अवगत हो रहे हैं तथा विद्यालय में उनके नामांकन, उपस्थिति एवं ठहराव को सुनिश्चित किया जा रहा है। छात्रवृत्ति प्रवेश हेतु अस्थायी आकर्षण पैदा कर रही है।
- 85% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों के वितरण से विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा विद्यालय आने के प्रति रुचि बढ़ी है। शासन द्वारा निर्मित एवं प्रदत्त नि:शुल्क पाठ्य पुस्तकें आकर्षक एवं रोचकता से युक्त हैं जिससे विद्यार्थियों को स्वाध्याय की आदत विकसित करने के साथ-साथ उनकी अधिगम क्षमता में भी वृद्धि हो रही है।
- 62% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार सुविधाओं को प्रदान करने में शिक्षकों को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जैसे– छात्रवृत्ति वितरण, ड्रेस वितरण, मिड-डे-मील योजना आदि तथा 37% शिक्षकों के अनुसार सुविधाओं को प्रदान करने में शिक्षकों को कठिनाइयाँ नहीं हो रही हैं। भोजन पकाने और वितरण का कार्य 'ग्राम शिक्षा समितियों/वार्ड शिक्षा समितियों' एवं भोजन पकाने वाले कर्मचारियों पर ही निर्भर रहता है।
- 67% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार डायट अपवंचित वर्ग के बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य कर रही है। 60% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार डायट विकलांग बच्चों के लिए अलग-अलग शिक्षा की व्यवस्था कर रही है। जिससे इन बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई न हो। 35% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार डायट द्वारा विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं होती है तथा 5% शिक्षकों ने अनिश्चितता जताई है।
- 72% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार

डायट में शिक्षण सामग्री की अनुपलब्धता के कारण इसका प्रभाव प्रशिक्षणार्थियों पर पड़ता है तथा 6% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने अनिश्चितता जताई है।

- 60% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार डायट को भी प्रशिक्षण कार्यक्रम के संचालन में कठिनाई होती है तथा 34% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार डायट को प्रशिक्षण कार्यक्रम के संचालन में कोई कठिनाई नहीं होती है। 75% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शिक्षकों को समय-समय पर प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिससे प्रशिक्षण के द्वारा वह शिक्षा की नई विधियों को सीख सकें तथा 5% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शिक्षकों को प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। 20% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने इनके प्रति अनिश्चितता प्रकट की है।
- 79% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यालय पर शिक्षण सामग्री उपलब्ध न होने के कारण शिक्षकों को पठन-पाठन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा 20% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यालय में शिक्षण सामग्री न होने से शिक्षकों के पठन-पाठन में कोई कठिनाई नहीं होती है।
- 69% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार समय-समय पर प्राथमिक विद्यालयों के कार्यों का मूल्यांकन एवं निरीक्षण होता है तथा 30% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों के कार्यों का मूल्यांकन एवं निरीक्षण समय से नहीं होता है।
- 52% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम शिक्षा समिति प्राथमिक विद्यालयों के वातावरण को सरस एवं व्यावहारिक बना रही है तथा 45% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम शिक्षा समिति विद्यालय के वातावरण को सरस एवं व्यावहारिक बनाने में सहयोग नहीं दे रही है।
- 89% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार बी.आर.सी. समन्वयकों द्वारा शिक्षकों को सुझाव एवं निर्देश दिया जाता है तथा 11% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ब्लॉक समन्वयकों द्वारा शिक्षकों को सुझाव एवं निर्देश नहीं दिया जाता है।
- 90% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार संकुल प्रभारी द्वारा पाठ्यपुस्तकों के वितरण में सहयोग प्रदान किया जाता है जिसके वितरण से छात्र वर्ग लाभान्वित होते हैं।
- 76% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम प्रधान द्वारा मध्याह्न भोजन कार्यक्रम में सहयोग प्रदान किया जाता है तथा 22% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम प्रधान द्वारा मध्याह्न भोजन योजना में सहयोग प्रदान नहीं किया जाता है। विद्यालय में 'पका-पकाया भोजन वितरण योजना' से बच्चे विद्यालय आने को प्रेरित हो रहे हैं। क्योंकि 'सूखा राशन वितरण योजना' के समय विद्यार्थियों का नामांकन तो बढ़ता था परंतु उपस्थिति एवं ठहराव में वृद्धि नहीं होती थी। 'पका-पकाया भोजन वितरण

योजना' से विद्यालय में नामांकन, उपस्थिति एवं ठहराव को सुनिश्चित किया जा रहा है। जबकि मात्र 16.94% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने नकारात्मक मत व्यक्त करते हुए कहा कि 'पका-पकाया भोजन वितरण योजना' से बच्चे विद्यालय आने को प्रेरित नहीं हुए हैं क्योंकि अधिकांशत: विद्यालयों में नियमित भोजन पकाने का कार्य किया ही नहीं जाता है।

- 79% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम प्रधान द्वारा मध्याह्न भोजन के अंतर्गत शिक्षकों को भोजन सामग्री उपलब्ध करवायी जाती है तथा 19% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार ग्राम प्रधान द्वारा मिड-डे-मील योजना में शिक्षकों को सहयोग नहीं प्रदान किया जाता है।
- 77% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शिक्षकों पर अन्य कार्यों का भार होने से उनकी पठन-पाठन में रुचि कम हो जाती है, अन्य कार्य जैसे-पल्स पोलियो, जनगणना आदि।
- 58% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार प्रधानों का शिक्षक के ऊपर नियंत्रण होने से अध्यापक वर्ग असंतुष्ट है जिसका प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है।
- 80% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शिक्षण अधिगम सामग्री द्वारा अध्यापकों को शिक्षण हेतु सहायता सामग्री निर्माण में सहायता मिलती है। निर्मित सामग्री को केवल प्रदर्शनी के लिए नहीं अपितु कक्षा शिक्षण में भी प्रयोग किया जाए।
- 92% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार तैयार भोजन से छात्र वर्ग लाभान्वित हुए हैं। इस योजना से छात्र संख्या में भी वृद्धि हुई है। 86% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार दोपहर भोजन योजना से शिक्षकों का ज्यादा समय इसकी व्यवस्था व देख-रेख में लगने से शिक्षा बाधित हो रही है तथा 12% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार दोपहर भोजन योजना से शिक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। 84% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यालयों में पका-पकाया भोजन देने के प्रावधान से पठन-पाठन में बाधा उत्पन्न हो रही है क्योंकि सारा समय इस व्यवस्था में ही बरबाद हो रहा है तथा 13% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार पका पकाया भोजन देने से विद्यालय के पठन -पाठन में बाधा उत्पन्न नहीं हो रही है।
- 79% शिक्षकों के अनुसार शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को पर्यावरणीय शिक्षा की जानकारी दी जाती है।
- 82% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का प्रभाव विद्यालय पर पड़ा है, जिससे विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा 16% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का प्रभाव विद्यालय पर नहीं पड़ रहा है।
- 81% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विशिष्ट बालकों की शिक्षा के लिए शिक्षकों

को डायट में विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि उन बच्चों को उसी विधि से पढ़ा सकें तथा 15% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विशिष्ट बालकों की शिक्षा पर शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है।

- 83% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यालयों में छात्रों को खेल-खेल में शिक्षा दी जाए जिससे बच्चे रुचि से सीखेंगे। 82% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार विद्यालयों में बालिका शिक्षा बढ़ाए जाने हेतु विशेष शिक्षा दी जा रही है तथा 16% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार बालिका शिक्षा बढ़ाए जाने हेतु कोई शिक्षा नहीं दी जा रही है।
- 80% शिक्षकों एवं अधिकारियों द्वारा सकारात्मक मत व्यक्त किये गए। इनके अनुसार शासन द्वारा विभिन्न मुद्दों में शिक्षकों और विद्यालयों के लिए अनुदान उपलब्ध है तथा 16% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार शासन शिक्षकों और विद्यालयों के लिए अनुदान उपलब्ध नहीं करा रहा है।
- 83% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार 'सर्व शिक्षा अभियान' का प्रभाव स्कूलों में बढ़ती उपस्थिति के रूप में दिखाई दे रहा है।
- 78% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने सकारात्मक मत व्यक्त करते हुए कहा कि अभिभावक वर्ग भी शिक्षा के प्रति जागरूक हुए हैं। 80% शिक्षकों एवं अधिकारियों द्वारा सकारात्मक मत व्यक्त किए गए। इनके अनुसार छात्रों को दी जाने वाली सुविधाओं से प्राथमिक विद्यालय के प्रति अभिभावकों का आकर्षण बढ़ा है। वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए तत्पर हैं तथा 18% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार छात्रों को दी जाने वाली सुविधाओं के बावजूद भी अभिभावकों का आकर्षण प्राथमिक विद्यालय के प्रति नहीं है। 67% शिक्षकों एवं अधिकारियों के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों के प्रति सामुदायिक सहभागिता बढ़ रही है तथा 29% शिक्षकों के अनुसार प्राथमिक विद्यालय के प्रति सामुदायिक जन सहभागिता नहीं बढ़ी है।
- 100% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने सकारात्मक मत व्यक्त किए। इन शिक्षकों के अनुसार शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का प्रभाव विद्यालय के नामांकन पर पड़ रहा है। प्रत्येक 1.5 किमी पर प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना, अनौपचारिक शिक्षा केंद्र, ब्रिज कोर्सों आदि का निर्माण किया जा रहा है जिससे नामांकन के साथ-साथ शिक्षा की पहुँच में विस्तार भी हो रहा है। 'अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, आदिवासी पर्वतीय इलाकों के व्यक्ति, विकलांग एवं बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष बल प्रदान किया जा रहा है' तथा आकर्षक सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।
- सभी 100% पदाधिकारियों द्वारा सकारात्मक मत व्यक्त किया गया। इनके अनुसार विकेंद्रीकरण व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा में सुधार हो रहा है।

- 45% पदाधिकारियों ने सकारात्मक मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया कि इस व्यवस्था के अंतर्गत सभी संस्थाएँ एवं समितियों का आपस में सामंजस्य हो रहा है तथा 55% सदस्यों द्वारा नकारात्मक मत व्यक्त किया गया कि सभी संस्थाओं एवं समितियों का आपस में सामंजस्य नहीं हो रहा है।
- सभी 100% पदाधिकारियों द्वारा स्वीकार किया गया कि सभी संस्थाएँ प्राथमिक शिक्षा के संचालन में सहयोग प्रदान कर रही हैं।
- सभी 100% पदाधिकारियों द्वारा माना गया कि सभी संस्थाओं एवं समितियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, सभी स्वतंत्र रूप से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर रही हैं।
- सभी 75% सदस्यों द्वारा सकारात्मक विचार व्यक्त किया गया कि स्थानीय निकायों को स्वयं अपने तरीकों से कार्य करने की स्वतंत्रता मिल रही है ताकि वे अपने विचारों को व्यक्त कर सकें तथा 25 सदस्यों द्वारा नकारात्मक मत व्यक्त किया गया कि स्थानीय निकायों को स्वयं अपने तरीकों से कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं मिल रही है उसें अधिकारियों का हस्तक्षेप होता रहता है।
- 50% सदस्यों द्वारा स्वीकार किया गया कि स्थानीय निकायों के कार्यों में अन्य इकाइयों का हस्तक्षेप ज्यादा होने से कार्य बाधित होता है, जबकि 50% सदस्यों ने अस्वीकार किया कि स्थानीय निकायों के कार्यों में अन्य इकाइयों का हस्तक्षेप कम होता है।
- इसके प्रति 56% सदस्यों द्वारा माना गया कि सभी इकाइयाँ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन सुचारू रूप से कर रही हैं तथा 44% सदस्यों द्वारा माना गया सभी इकाइयाँ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन नहीं कर रही हैं।
- सभी 75% सदस्यों ने स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया कि सभी समितियाँ एवं संस्थाएँ छात्रों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य कर रही हैं तथा 25% सदस्यों ने अस्वीकार करते हुए स्पष्ट किया समितियाँ एवं संस्थाएँ छात्रों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य नहीं कर रही हैं।
- 72% सदस्यों द्वारा माना गया कि विकेंद्रीकरण व्यवस्था के हो जाने के बाद ही हम अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर पा रहे हैं, क्योंकि सभी अधिकारों के प्रति जागरूक हुए हैं तथा 28% सदस्यों द्वारा नकारात्मक मत देते हुए माना गया कि इस व्यवस्था के हो जाने के बाद भी हम अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।
- 91% सदस्यों द्वारा सकारात्मक मत व्यक्त किया गया। इनके अनुसार इन समितियों एवं संस्थाओं के सदस्यों द्वारा विद्यालयों का मूल्यांकन एवं निरीक्षण किया जा रहा है।
- सभी 100% पदाधिकारियों ने स्वीकार किया कि ये संस्थाएँ बेसिक स्कूलों में उपस्थिति बढ़ाए जाने के संबंध में कार्य कर रही हैं तथा अपने सुझावों को प्रस्तुत कर रही हैं।
- 93% सदस्यों द्वारा सकारात्मक विचार देते

हुए माना गया कि इस व्यवस्था के तहत् प्राइमरी स्कूलों की देख-रेख स्थानीय निकाय कर रहे हैं।

- सभी 100% सदस्यों द्वारा सकारात्मक मत देते हुए स्पष्ट किया गया कि इन इकाइयों का प्रमुख उत्तरदायित्व समुदाय को जागरूक बनाना है। जिससे प्रत्येक परिवार का प्रत्येक बालक प्राथमिक शिक्षा में भाग ले जिससे नामांकन एवं उपस्थिति बढ़ेगी।
- 45% सदस्यों द्वारा माना गया कि संस्थाओं व समितियों द्वारा काम में हस्तक्षेप कर समस्या उत्पन्न की जाती है तथा 55% सदस्यों द्वारा नकारात्मक मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया गया कि संस्थाओं एवं समितियों द्वारा काम में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।
- 81% सदस्यों द्वारा स्वीकार किया गया कि यह व्यवस्था हो जाने के बाद भी हम प्राथमिक शिक्षा से जुड़े सभी लक्ष्यों को प्राप्त कर रहे हैं तथा 19% सदस्यों के द्वारा कहा गया कि हम इन सभी लक्ष्यों से कोसों दूर हैं।
- 62% सदस्यों द्वारा सकारात्मक विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया गया कि सभी संस्थाएँ एक-दूसरे को समय-समय पर सहयोग प्रदान कर रही हैं तथा 38% सदस्यों द्वारा नकारात्मक विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया गया कि सभी संस्थाएँ एक-दूसरे को समय पर सहयोग नहीं प्रदान कर रही हैं। सभी 86% सदस्यों द्वारा माना गया कि अभिभावक वर्ग प्राथमिक शिक्षा के प्रति जागरूक हुए हैं। सभी 100% सदस्यों द्वारा सकारात्मक मत व्यक्त किया गया। इनके अनुसार प्राथमिक शिक्षा के प्रति सामुदायिक जनसहभागिता बढ़ी है।

उपरोक्त सभी कथनों पर 60% से अधिक सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई हैं। अतः यह स्पष्ट हो रहा है कि प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था की विकेंद्रीकरण प्रक्रिया से विद्यालय के शैक्षिक वातावरण पर सार्थक प्रभाव पड़ रहा है। प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण के प्रति संबंधित व्यक्तियों का दृष्टिकोण सकारात्मक है। अतः शून्य परिकल्पना "प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था की विकेंद्रीकरण व्यवस्था से विद्यालय के शैक्षिक वातावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।" निरस्त होती है तथा शोध परिकल्पना चयनित हो जाती है।

परिकल्पना 2– प्राथमिक शिक्षा में विकेंद्रीकृत व्यवस्था की प्रभावशीलता को अनेक समस्याएँ अवरुद्ध कर रही हैं।

प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकृत व्यवस्था से जुड़े अधिकारियों, सदस्यों एवं शिक्षकों का साक्षात्कार किया गया और यह जानने का प्रयास किया गया कि प्राथमिक शिक्षा की विकेंद्रीकृत व्यवस्था के अंतर्गत कौन-कौन सी समस्याएँ उनकी प्रभावशीलता को कम करती हैं। 7 नगर बेसिक शिक्षा समिति, 49 खण्डस्तरीय बेसिक शिक्षा समिति, 502 ग्राम बेसिक शिक्षा समिति, एवं 1500 शिक्षक एवं अधिकारियों से साक्षात्कार अनुसूची पर प्राप्त अनुक्रियाएँ जो उभरकर सामने आई हैं। इन समस्याओं को तालिका-3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका - 3

क्र.सं.	उपस्थित समस्याएँ	सकारात्मक प्रतिक्रिया(%)
1.	ग्रामीण लोगों की अशिक्षा।	85
2.	अधिकारियों में उदासीनता/बेरुखी/ तत्परता की कमी।	79
3.	अधिकारियों में बेहतर तालमेल की कमी।	69
4.	शिक्षकों पर अत्यधिक कार्यभार।	90
5.	आर्थिक समस्याएँ।	83
6.	विकेंद्रीकृत व्यवस्था के प्रति उचित संझ की कमी।	90
7.	विकेंद्रीकृत व्यवस्था से जुड़े लोगों में स्थानीय राजनीति।	75
8.	सामुदायिक सहभागिता की कमी।	65
9.	जाति एवं सामाजिक संरचना से संबंधित समस्याएँ।	75
10.	उचित निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की कमी।	63
11.	ग्राम शिक्षा समितियों की मनमानी एवं अत्यधिक हस्तक्षेप।	80
12.	स्कूली व्यवस्था में स्थानीय निकायों का अत्यधिक हस्तक्षेप।	83
13.	अध्यापकों एवं छात्रों का अनुपात मानक के अनुरूप न होना।	75
14.	ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों में जागरूकता की कमी।	70
15.	प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों पर स्थानीय निकायों का अत्यधिक दबाव।	82
16.	समुदाय के सहयोग के अभाव संबंधी समस्या।	100
17.	नियमित निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण संबंधी समस्या।	98.30
18.	अभिभावकों की उदासीनता की समस्या।	95
19.	उत्तरदायित्वों के प्रति सजगता का अभाव।	85

व्याख्या – इस शोध का एक प्रमुख उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकरण की प्रभावशीलता को अवरुद्ध कर रही समस्याओं को जानना भी है। समस्याओं के प्रति संबंधित उत्तरदायी अधिकारियों एवं सदस्यों की प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित किया जा रहा है। इस व्यवस्था से जुड़े 85% सदस्यों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की है कि ग्रामीण लोग अशिक्षित हैं। इसी अशिक्षा के कारण वे लोग नहीं जानते कि विकेंद्रीकृत व्यवस्था क्या है?

- विकेंद्रीकृत व्यवस्था से जुड़े 79% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ दीं कि प्राथमिक शिक्षा में

विकेंद्रीकृत व्यवस्था के प्रति अधिकारियों में उदासीनता, बेरुखी एवं तत्परता की कमी है, क्योंकि इससे जुड़े व्यक्ति अपने कार्यों के प्रति तत्परता नहीं दिखाते हैं।

- 69% सदस्यों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की है कि अधिकारियों में बेहतर तालमेल का अभाव है। इस व्यवस्था से जुड़े अधिकारी आपस में सामंजस्य नहीं बैठा पाते हैं, क्योंकि सबके कार्य करने एवं सोचने का तरीका अलग होता है।
- 90% सदस्यों ने विचार व्यक्त किये कि शिक्षकों पर अत्यधिक कार्यभार होने की वजह से शिक्षा में गुणवत्ता का ह्रास हो रहा है।
- 83% सदस्यों ने अपना मत व्यक्त किया कि आर्थिक समस्या के कारण शिक्षक एवं अधिकारी कार्य के प्रति जागरूक नहीं दिखते हैं क्योंकि धन की आवश्यकता पड़ने पर अधिकारी काम को रोक देते हैं। 90% सदस्यों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि इस व्यवस्था के प्रति लोगों में उचित संझ की कमी है जिसके कारण इस व्यवस्था को चलाने में समस्याएँ आती हैं।
- 75% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि इस व्यवस्था में स्थानीय राजनीति की वजह से यह व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित नहीं हो पा रही है क्योंकि सभी व्यक्ति एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहते हैं।
- 63% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं कि इससे जुड़े लोगों में सामुदायिक सहभागिता की कमी है। जब लोगों में जागरूकता आएगी तभी सामुदायिक सहभागिता बढ़ेगी। 75% लोगों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि जातिवाद के आधार पर सामाजिक संरचना की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए।
- 63% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि इस व्यवस्था में उचित निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की कमी है क्योंकि जब तक किसी कार्य का निरीक्षण नहीं होगा तब तक पता कैसे चलेगा कि यह व्यवस्था सही रूप से कार्य कर रही है या नहीं।
- इस व्यवस्था से जुड़े 80% लोगों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि ग्राम शिक्षा समिति का प्राथमिक विद्यालयों में अत्यधिक हस्तक्षेप होने के कारण शिक्षक पर हमेशा अत्यधिक दबाव रहता है जिसके कारण शिक्षण कार्य बाधित होता है।
- 83% सदस्यों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की है कि स्कूली व्यवस्था में स्थानीय निकायों का अत्यधिक हस्तक्षेप होने के कारण स्कूली व्यवस्था को सुचारू रूप से नहीं चला पा रहे हैं। इस व्यवस्था से जुड़े 75% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापक एवं छात्र का अनुपात मानक के अनुरूप नहीं होने के कारण एक ही अध्यापक कई कक्षाओं को संचालित करते हैं।
- 70% सदस्यों ने प्रतिक्रियाएँ दी हैं कि ग्राम शिक्षा समिति के सदस्यों में जागरूकता की कमी है। इसलिए इस समिति के सदस्यों

को जागरूक बनाया जाए तभी इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है।

- 82% व्यक्तियों ने प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं कि प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों पर स्थानीय निकायों का अत्यधिक दबाब होने के कारण पढ़ाई बाधित होती है।
- 80% शिक्षकों एवं अधिकारियों ने स्पष्ट किया कि प्राथमिक विद्यालयों के सुविधायुक्त होने के बावजूद भी अधिकांश अभिभावकों का रुझान अपने बच्चों को विद्यालय भेजने के प्रति नहीं हो पा रहा है। कुछ अभिभावक अपने बच्चों का प्रवेश विद्यालयों में कराकर अपने कर्तव्य से इतिश्री कर लेते हैं तथा अधिकांशतः अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों से बालश्रम कराया जा रहा है। बालिका शिक्षा के प्रति आज भी अभिभावकों का दृष्टिकोण उदासीन है।
- शिक्षक के अन्य उत्तरदायित्वों के प्रति सजगता के अभाव के संबंध में देखा गया कि 85% शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग नहीं रहते।
- समुदाय के सक्रिय सहयोग के अभाव की समस्या के प्रति 80% शिक्षकों ने स्पष्ट किया कि प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने में समुदाय के सक्रिय सहयोग की नितांत आवश्यकता है। परंतु समुदाय के लोगों का सक्रिय सहयोग मिल पाना कठिन है।

उपर्युक्त कथनों के प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा विकेंद्रीकृत व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने में अनेक समस्याएँ हैं जिनमें ग्रामीणों की अशिक्षा, अधिकारियों में तालमेल का अभाव, सामुदायिक सहभागिता की कमी, स्थानीय निकायों का हस्तक्षेप तथा शासन द्वारा नियमित पर्यवेक्षण आदि की समस्याएँ विद्यमान हैं। इस प्रकार परिणामों को देखते हुए शून्य परिकल्पना 'प्राथमिक शिक्षा के विकेंद्रीकृत व्यवस्था की प्रभावशीलता को अनेक समस्याएँ अवरुद्ध नहीं कर रही हैं' निरस्त होती है तथा शोध परिकल्पना चयनित हो जाती है।

शोधकर्त्री द्वारा दिए गए सुझाव

शोधकर्त्री द्वारा आंकड़ों के संकलन हेतु डायट्स, बी.आर.सी., एन.पी.आर.सी., विभिन्न समितियों तथा प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक वातावरण के प्रभाव से संबंधित समस्याओं का अवलोकन किया गया। शिक्षकों, पदाधिकारियों, समन्वयकों एवं संकुल प्रभारियों के साथ साक्षात्कार किया जिससे कुछ तथ्य निकलकर आए जो विचारणीय हैं, जिन्हें नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के लिए सुझाव

- जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में निर्धारित उद्देश्यों के तहत् प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जा रहा है, परंतु ऐसा मालूम होता है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम में जीवंतता की कमी रह गई है। अभी भी मानक के अनुसार प्रशिक्षक नियुक्त नहीं हैं। प्रशासन को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि संस्थानों में मानक के अनुसार प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त करे।

- डायट द्वारा सेवाकालीन प्रशिक्षण जो ब्लॉक संसाधन केंद्रों में आयोजित किये जाते हैं, इनमें निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार, निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त तो कर रहे हैं परंतु वरिष्ठ अध्यापकों की रुचि बहुत कम दिखायी देती है। वह प्रशिक्षण में सीख तो लेते हैं परंतु विद्यालय में उसका उपयोग नहीं करते हैं। उसकी सार्थकता तभी होगी जब शिक्षक उसका प्रयोग विद्यालय में करेंगे। इसके लिए शिक्षकों के कार्यों का आकलन किया जाए तभी शिक्षक प्राथमिक शिक्षा के प्रति गंभीर हो सकेंगे।
- डायट्स में भी कई आवश्यक सुविधाओं का अभाव है। इसके कारण शिक्षण स्तर पर प्रभाव पड़ रहा है। शैक्षिक प्रशासन को डायट्स में आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए, जिससे प्रशिक्षकों को असुविधा न हो।
- डायट्स द्वारा अपने जिले में स्थित बी. आर.सी., एन.पी.आर.सी. एवं ग्राम शिक्षा समितियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाएँ। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की रिपोर्ट प्रशासन को भेजी जाए।
- डायट्स जिले की प्रमुख संस्था है जिसका उत्तरदायित्व है कि वह सभी बी.आर.सी. व एन.पी.आर.सी. के प्रभारियों की बैठकें बुलाकर, उनसे उनके क्षेत्र के विद्यालयों की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करें।
- जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान में आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को और अधिक रोचक बनाने की आवश्यकता है।

ब्लॉक संसाधन केंद्र के लिए सुझाव

- ब्लॉक संसाधन केंद्र ब्लॉक स्तर की एक प्रमुख संस्था है, जिसे अपने ब्लॉक स्तर पर स्थापित एन.पी.आर.सी. तथा प्राथमिक विद्यालयों के प्रति गंभीर होना चाहिए।
- समन्वयकों द्वारा विद्यालयों का निरीक्षण समय पर किया जाए, जिससे वे अपने ब्लॉक क्षेत्र के विद्यालयों की अच्छे से देख-रेख कर सकें।
- बी.आर.सी. द्वारा नामांकन, उपस्थिति एवं बच्चों की उपलब्धि की संप्राप्ति की जाए, जिससे प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार हो।
- ब्लॉक संसाधन केंद्र यह देखे कि शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग अध्यापक शिक्षण कार्य में कर रहे हैं या नहीं।
- विद्यालयों में नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों का वितरण, यूनिफॉर्म एवं छात्रवृत्ति वितरण में आने वाली समस्याओं का निदान ब्लॉक स्तर पर किया जाए।
- ब्लॉक समन्वयकों का कर्तव्य है कि वह अपने ब्लॉक में स्थित न्याय पंचायत संसाधन केंद्रों से प्राथमिक विद्यालयों के बारे में सही रिपोर्ट मांगें और उन पर अपना सुझाव दें।
- ब्लॉक समन्वयक प्राथमिक शिक्षा की उचित स्थिति से जिला स्तरीय शिक्षा समिति को अवगत कराएँ।
- इस अध्ययन से पता चला कि बी.आर.सी. द्वारा मासिक प्रशिक्षण का आयोजन नहीं किया जा रहा है।

एन.पी.आर.सी. के लिए सुझाव

- एन.पी.आर.सी. के द्वारा नामांकन वृद्धि, उपस्थिति एवं नवीन शिक्षण तकनीकी के प्रयोग द्वारा अध्यापकों में शैक्षिक कार्यकुशलता का विकास किया जाए।
- एन.पी.आर.सी. द्वारा शैक्षिक कार्यों में समुदाय का सहयोग प्राप्त किया जाए।
- एन.पी.आर.सी. अपनी न्याय पंचायत के अंतर्गत निर्धारित स्कूलों की सही स्थिति की रिपोर्ट ब्लॉक केंद्र पर दे, जिससे उनसे जुड़ी समस्याओं का निदान किया जा सके।
- एन.पी.आर.सी. विद्यालयों का सर्वेक्षण एवं सूक्ष्म नियोजन करके प्राथमिक विद्यालयों के उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाए।
- एन.पी.आर.सी. राष्ट्रीय अभियानों के लिए अध्यापकों में जागरूकता लाने का कार्य किया जाए।
- ये इकाई एक संसाधन के रूप में कार्य कर रही है। इसलिए इसे अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गंभीर होना चाहिए।

जिला बेसिक शिक्षा समिति के लिए सुझाव

- जिला बेसिक शिक्षा समिति अपने क्षेत्र में स्थापित विद्यालयों के लिए शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था करे।
- जिला बेसिक शिक्षा समिति अपनी अन्य समितियों के साथ समन्वय कर रही है लेकिन विचारों में मतभेद होने के कारण कहीं-कहीं समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- जिला बेसिक शिक्षा समितियाँ बेसिक स्कूलों के नामांकन अभियान में सहयोग प्रदान कर रही हैं।
- जिला बेसिक शिक्षा समितियाँ प्राथमिक विद्यालयों से जुड़ी कठिनाइयों की रिपोर्ट शासन को भी प्रेषित करें।
- ग्राम शिक्षा समिति एवं खण्डस्तरीय शिक्षा समिति द्वारा निर्धारित कार्यों को किया जा रहा है, इसका निरीक्षण इस समिति द्वारा किया जाए।
- समिति अपनी अन्य समितियों से विद्यालयों की हर गतिविधियों की रिपोर्ट माँगे, जिससे प्राथमिक स्कूलों का सही मूल्यांकन हो सके।
- यह समिति शिक्षा की अभिवृद्धि के लिए अपनी अन्य समितियों को सुझाव भी दे।

नगर बेसिक शिक्षा समिति के लिए सुझाव

- नगर बेसिक शिक्षा समिति अपनी अन्य समितियों को नामांकन के लिए प्रोत्साहित करे, जिससे अधिक विद्यार्थी नामांकित हो सकें।
- इस समिति द्वारा विद्यालय में संसाधन उपलब्ध कराकर विद्यालय के सुंदरीकरण का कार्य किया जाए।
- नगर बेसिक शिक्षा समिति विद्यालयों का सूक्ष्म निरीक्षण कर उनकी समस्याओं से अवगत हों तथा उनके निदान हेतु अपने सुझाव भी दें।
- यह समिति विद्यालय संचालन में भी अपना सहयोग प्रदान करे।

- इस समिति की स्थापना का उद्देश्य भी यही है कि वह प्राथमिक शिक्षा से जुड़ी हर गतिविधि का अवलोकन करे और निदानात्मक उपाय ढूँढ़े।

खण्डस्तरीय शिक्षा समिति के लिए सुझाव

- खण्डस्तरीय शिक्षा समिति बेसिक शिक्षा संबंधी योजनाओं के क्रियान्वयन का निरीक्षण करे कि यह योजनाएँ सभी जगह प्रभावी रूप से क्रियान्वित हो रही हैं या नहीं।
- खण्डस्तरीय शिक्षा समिति ग्राम शिक्षा समिति को प्रभावी बनाए जिससे वह अपना सहयोग प्रदान करे।
- यह समिति छात्रवृत्ति वितरण एवं नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकों के वितरण में अधिक से अधिक सहयोग दे जिससे अधिक विद्यार्थी लाभान्वित हो सकें।
- समिति के द्वारा विद्यालयों का निरीक्षण कर उसकी गुणवत्ता में सुधार किया जाए।
- इस अध्ययन से यह भी पता चला कि यह समिति छात्र-अध्यापक अनुपात बनाए रखने के लिए भी अपना सुझाव अन्य समितियों को देती है।

ग्राम शिक्षा समिति के लिए सुझाव

- ग्राम शिक्षा समिति इस व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई है इसलिए इसे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना चाहिए।
- ग्राम शिक्षा समिति के कार्यों का अवलोकन किया जाए। उनके कार्यों के आधार पर उन्हें प्रोत्साहन दिया जाए, जिससे उनमें अपने कार्यों को करने के प्रति सक्रियता बढ़ सके।
- शोध के दौरान यह भी अनुभव किया गया कि ग्राम प्रधान द्वारा विभिन्न योजनाओं के संचालन हेतु प्राप्त धन का दुरुपयोग किया जा रहा है। ग्राम प्रधान व्यय किये जाने वाली पूँजी की कटौती से अपनी जेब भरता है। अत: उसकी संपत्ति का वार्षिक निरीक्षण किया जाए।
- यह समिति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन पूर्ण रूप से नहीं कर रही है इसके लिए अच्छे कार्य करने वाली ग्राम शिक्षा समितियों को प्रोत्साहन दिया जाए जिससे उनमें सक्रियता बढ़े।
- ग्राम शिक्षा समिति प्राथमिक शिक्षा की अभिवृद्धि हेतु समुदाय का सहयोग प्राप्त करने के लिए ग्रामीण जनता को जागरूक बनाए।

शिक्षकों के लिए सुझाव

- इस समय जिलों में सर्वशिक्षा कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसके लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए सीमैट एवं डायट में प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम की सार्थकता तभी होगी जब शिक्षक इस लक्ष्य की ओर अभिप्रेरित हों तथा सक्रियता दिखाएँ।
- अधिकांश विद्यालय एकल हैं। अत: प्राथमिक विद्यालयों में एक अध्यापक नहीं बल्कि कम-से-कम दो या तीन अध्यापक

होने चाहिए।

- शोधकर्त्री ने अपना सर्वेक्षण करते समय शिक्षकों द्वारा बताई गई जिस कठिनाई का अनुभव किया वह यह है कि प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों को जिले में चुनाव, जनगणना एवं भोजन बनवाने जैसे कार्य करवाए जाते हैं। विद्यालयों में वैसे ही शिक्षकों की कमी रहती है। इसके अतिरिक्त सभी कार्यों में लगाए जाने से वे विद्यालय, शिक्षण में कम समय दे पाते हैं। प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण का स्तर सुधारना है तो प्रशासन को शिक्षकों द्वारा इन कार्यों को करवाए जाने का विरोध करना चाहिए।
- सरकार विद्यालय प्रबंध समिति को विद्यालय विकास हेतु अनुदान प्रदान कर रही है जिससे विद्यालय के समस्त भौतिक संसाधनों की पूर्ति हो सके और विद्यालय में शैक्षिक वातावरण का निर्माण हो। विद्यालय प्रबंध समिति का दायित्व है कि वह अनुदान का सही सदुपयोग करे।
- जिन विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं का अभाव है वहाँ शैक्षिक प्रशासन को विद्यालयों की स्थापना के साथ-साथ आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था भी करनी चाहिए।
- शिक्षा व्यवस्था का विकेंद्रीकरण गुणात्मकता को बढ़ाने के लिए किया गया जिससे विद्यालय की पूरी शैक्षिक व्यवस्था एक श्रृंखला से जुड़े। विकेंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था से जुड़े समस्त अधिकारियों को प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा स्कूलों का समय-समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए जिससे शिक्षा की गुणात्मकता बनी रहे।

संदर्भ

1. एन.सी.ई.आर.टी., 2005-06 *'शिक्षा की प्रगति'*, प्राथमिक शिक्षा एवं राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उ.प्र.
2. एन.सी.ई.आर.टी., 2006 *'बुनियाद'* त्रैमासिक पत्रिका, द्वितीय एवं तृतीय अँक, विद्या भवन, निशांतगंज, लखनऊ
3. जैन एवं शर्मा, 2007 'युनिवर्सलाइज़ेशन ऑफ एलिमेंट्री एजुकेशन: चैलेंज फॉर कंट्री', *यूनिवर्सिटी न्यूज़*, मार्च 2007, पृ. 13-15

बदलते पड़ावों पर चौकस निगाह

भिन्न रूप से सक्षम बच्चों का विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों में परागमन (ट्रांज़िशन): एक अध्ययन

शारदा कुमारी*

1990 के दशक में सलमांका में हुई विश्व कांफ्रेंस के बाद 'इंक्ल्यूसन' सभी बच्चों की शिक्षा के लिए प्रभावशाली नीति के रूप में उभरा। आज के समय की माँग यह है कि एक लचीली, व्यापक और संतुलित पाठ्यचर्या बने जो सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। एक इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या ऐसे स्कूलों की आवश्यकता को मान्यता देती है जो विद्यार्थियों के वैयक्तिक अंतरों को ध्यान में रखती हो और इतनी लचीली हो कि विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को पाने में समर्थ हो सकें। शिक्षाशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के प्रयास यही हैं कि इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन हेतु किसी तरह की कमी न रह जाए और बच्चों में स्वावलंबन एवं स्वतंत्र जीवन कौशल विकसित किए जाएँ।

वर्तमान स्थिति यह है कि जहाँ एक ओर सभी विद्यालयों को 'इंक्ल्यूसिव' बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है तो दूसरी ओर 'विशेष स्कूल' भी विशेष ज़रूरतों वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को पूरा कर रहे हैं। बहुत-से बच्चे यहाँ दाखिला लेते हैं और विशेष सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। विद्यालयी शिक्षा के स्तर तक तो इस प्रकार की सुविधाओं वाले विद्यालय मौजूद हैं।

परंतु उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए बच्चे 'नियमित संस्थाओं'/'नियमित शिक्षण संस्थाओं' में प्रवेश लेते हैं। यहाँ आकर विद्यार्थी किस प्रकार से समायोजन स्थापित कर पाते हैं, यह सामाजिक, शैक्षिक ही नहीं अपितु नीतिपरक विषय का मुद्दा है। प्रस्तुत शोध अध्ययन बच्चों के ऐसे अनुभवों और अनुभवों के आधार पर उपजे शैक्षिक निहितार्थों पर प्रकाश डालता है जो एक स्तर की शिक्षा विशेष स्कूलों में पूरी करने के दौरान अर्जित किए गए हैं।

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मं. शि. एवं प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर-7, आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-22

Ch-3.indd 61 5/20/2014 9:54:57 AM

सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों ने शिक्षा की सामाजिक और सांस्कृतिक महत्ता को स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति में भी प्राचीन काल से ही शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। भारतीय विचारकों ने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा की भूमिका और महत्ता पहचानते हुए उसे वह मूल उद्‌गम माना है जहाँ से परिवर्तन के रास्ते खुलते हैं। पाश्चात्य सभ्यताओं के मनीषियों ने भी वृहत्तर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका के रूप में शिक्षा को चिह्नित किया है और शिक्षा से स्वतंत्र और पूर्णतर मनुष्य बनने की बात कही है। बहुत-से शिक्षा दार्शनिकों का मानना है कि शिक्षा समाज में अन्यायपूर्ण एवं अनैतिक संरचनाओं को समाप्त करने और आर्थिक रूप से पिछड़े तबकों को वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति के लिए बौद्धिक चिंतन और कौशलों से युक्त करती है। ये सभी ऐसे तर्क हैं जो स्कूली शिक्षा को वैधता प्रदान करते हैं। यदि स्कूली शिक्षा के इतिहास पर नज़र डालें तो यह स्पष्ट होता है कि स्कूली शिक्षा ने एक हद तक अवसरों की समानता प्रदान करने, सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन को संभव बनाने में मदद की है। परंतु प्रश्न यह है कि क्या स्कूली शिक्षा समाज के हर वर्ग के हर बच्चे तक पहुँच पाई है? विशेषकर भिन्न रूप से सक्षम बच्चों के संदर्भ में यह सवाल और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

क्या विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शारीरिक, संवेदनात्मक एवं बौद्धिक ज़रूरतों का ध्यान रख पाने में सक्षम हो पाई है? इस सवाल का उत्तर परिवर्तन के उन सभी दौरों में निहित है जिनसे होकर स्कूली शिक्षा व्यवस्था गुज़री है। विशेष आवश्यकता वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में भारत में लागू प्रावधानों की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि 1970 से पहले प्रमुख नीतियों का झुकाव 'पृथक्करण' या अलग किए जाने की ओर था। अनेक प्रशिक्षकों का विश्वास था कि शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण बच्चे इतने अलग थे कि वे एक सामान्य स्कूल की गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते थे। इससे पहले मिशनरियों द्वारा 1880 के दशक में दया की भावना के आधार पर इन बच्चों के लिए पृथक् रूप से विद्यालय खोले गए थे। समाजशास्त्रियों द्वारा विभेदीकरण/अलगाव की नीतियों की आलोचना हुई संकेत किया गया कि "विशेष शिक्षा व्यवस्था सामाजिक अलगाव और विकलांगों के सामाजिक रूप से अकेले पड़ जाने की ओर ले जा रही है, यह उनके आगे की पूरी जिंदगी के लिए अलग दुनिया बना रही है।" 1970 के दशक में संघ सरकार द्वारा नियमित विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने हेतु आई.ई.डी.सी. योजना शुरू की गई यह योजना इन बच्चों की सामाजिक ज़रूरतों के प्रत्युत्तर में अवश्य थी परंतु आँकड़े दर्शाते हैं कि विशेष आवश्यकता प्राप्त बच्चों तक पहुँच अपर्याप्त ही रही। ज़रूरत इस बात की है कि इन सभी बच्चों की सभी तरह के शैक्षणिक अवसरों तक पूरी पहुँच हो।

1990 के दशक में सलमांका में हुई विश्व कांफ्रेंस के बाद 'इंक्ल्यूसन' सभी बच्चों की शिक्षा के लिए प्रभावशाली नीति के रूप में उभरा। आज के समय की माँग यह है कि एक लचीली, व्यापक और संतुलित पाठ्यचर्या बने जो सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। एक इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या ऐसे स्कूलों की आवश्यकता को मान्यता देती है जो विद्यार्थियों के वैयक्तिक अंतरों को ध्यान में रखती हो और इतनी लचीली हो कि विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को पाने में समर्थ हो सकें। शिक्षाशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के प्रयास यही हैं कि इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन हेतु किसी तरह की कमी न रह जाए और बच्चों में स्वावलंबन एवं स्वतंत्र जीवन कौशल विकसित किए जाएँ।

वर्तमान स्थिति यह है कि जहाँ एक ओर सभी विद्यालयों को 'इंक्ल्यूसिव' बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है तो दूसरी ओर 'विशेष स्कूल' भी विशेष ज़रूरतों वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को पूरा कर रहे हैं। बहुत-से बच्चे यहाँ दाखिला लेते हैं और विशेष सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। ये विद्यालय जिन्हें खास संदर्भों में 'विशेष' या 'स्पेशल' स्कूल कहा जाता है, विकलांगता के आधार पर बच्चों की शारीरिक और मानसिक ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष प्रावधान जुटाते हैं, जैसे–

- विशेष प्रकार की ढाँचागत सुविधाएँ जो विकलांगता के प्रकार के अनुसार बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करती हैं, जैसे– दृष्टिबाधित विद्यालयों की सुविधाएँ।
- ज़रूरतों के आधार पर विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक जैसे– मूक-बधिर बच्चों के लिए अलग से शिक्षक।
- विशेष प्रकार के उपकरण जो विकलांगता को ध्यान में रखते हुए बच्चों को विशेष सुविधा देते हों, जैसे– ब्रेल लिपि में पुस्तकें, सॉफ्टवेयर जॉब आदि।
- अलग तरह की शिक्षण पद्धतियाँ जैसे– संकेत भाषा का प्रयोग।
- विशेष रूप से तैयार की गई शिक्षण सामग्री, जैसे–उभरे हुए नक्शे, ऑडियो पुस्तकें आदि।
- ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए खेल एवं मनोरंजन के उपकरण।
- आवश्यकता के आधार पर पाठ्यपुस्तकें, जैसे–ब्रेल में।

विद्यालयी शिक्षा के स्तर तक तो इस प्रकार की सुविधाओं वाले विद्यालय मौजूद हैं और बच्चों के प्रति 'रक्षात्मक' रुख अपनाते हुए उन्हें औपचारिक शिक्षा सुलभ करवाते हैं। परंतु उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए बच्चे 'नियमित संस्थाओं'/'नियमित शिक्षण संस्थाओं' में प्रवेश लेते हैं। संभवतया उनके पास और कोई विकल्प न हो क्योंकि उच्च शिक्षा के लिए और व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए 'विशेष महाविद्यालयों' या फिर 'विशेष प्रशिक्षण संस्थाओं' की संख्या नगण्य ही है। एक अवधि विशेष अर्थात् एक स्तर विशेष जैसे माध्यमिक अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर तक विशेष विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद सामान्य या नियमित संस्था में प्रवेश लेना क्या

उतना ही आसान है जितना कि पढ़ने-जानने में सरल प्रतीत हो रहा है। यहाँ आकर विद्यार्थी किस प्रकार से समायोजन स्थापित कर पाते हैं, यह सामाजिक, शैक्षिक ही नहीं अपितु नीतिपरक विषय का मुद्दा है। प्रस्तुत शोध अध्ययन बच्चों के ऐसे अनुभवों और अनुभवों के आधार पर उपजे शैक्षिक निहितार्थों पर प्रकाश डालता है जो एक स्तर की शिक्षा विशेष स्कूलों में पूरी करने के दौरान अर्जित किए गए हैं और माध्यमिक या व्यावसायिक शिक्षा के लिए नियमित संस्थाओं में प्राप्त किए गए हैं।

समस्या कथन

भिन्न रूप से सक्षम बच्चों का विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों/शैक्षिक संस्थाओं में परागमन (ट्राँजिशन) : एक अध्ययन।

उपर्युक्त कथन के आधार पर कुछ शोध प्रश्न उभरते हैं जो इस प्रकार हैं–

- विशेष विद्यालयों से नियमित विद्यालयों/संस्थाओं में परागमन के मुख्य कारण क्या रहे होंगे या हो सकते हैं?
- परागमन की ओर अभिमुख विद्यार्थियों की औसत संख्या क्या है ?
- विद्यार्थी विशेष सुविधा सुलभ परिवेश से यकायक सुविधावंचित वातावरण में शारीरिक रूप से किस प्रकार समायोजन स्थापित कर पाते हैं?
- दोनों स्थितियों में से भावात्मक समायोजन किस स्थिति विशेष में तुलनात्मक रूप से बेहतर है?
- विद्यार्थी व्यावहारिक रूप से किस प्रकार भिन्न हैं और उनके व्यवहार में भिन्नता के क्या कारण हो सकते हैं?

प्रस्तुत अध्ययन इन शोध प्रश्नों की खोज-पड़ताल करता है।

समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दावली का स्पष्टीकरण

- **भिन्न रूप से सक्षम बच्चे** – वे बच्चे जिनमें जन्म के समय से ही अथवा जन्म के बाद किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक स्तर से अलगाव पाया गया हो। सामान्य प्रचलन की भाषा में 'अलगाव' शब्द 'विकृति' या 'दोष' की ओर संकेत करता है। जैसे– श्रवण दोष, दृष्टि दोष आदि। समय-समय पर इस तरह के बच्चों के लिए अलग-अलग शब्दावली प्रयुक्त की गई जैसे– अपंग बच्चे (नेत्रहीन, मूक-बधिर आदि), विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, चुनौतीपूर्ण बच्चे और अब भिन्न रूप से सक्षम बच्चे।
- **विशेष विद्यालय** – चुनौतीपूर्ण बच्चों की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए अर्थात विकलांगता के आधार पर खोले गए विद्यालय। इस तरह के विद्यालयों की शुरूआत 1880 के दशक में इसाई मिशनरियों द्वारा दया के आधार पर की गई थी। नेत्रहीन लोगों के लिए 1887 में पहला स्कूल खुला, मूक-बधिर लोगों के लिए पहली संस्था की स्थापना 1988 में हुई। मंदबुद्धि लोगों के लिए पहला स्कूल

1934 में खुला। शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता के आधार पर इन विद्यालयों में विशेष तरह की सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं।

- **नियमित/सामान्य विद्यालय** – स्तरवार शिक्षा प्रदान करने वाले सामान्य विद्यालय जो किसी विद्यार्थी विशेष की शारीरिक या मानसिक विकलांगता की ज़रूरत के लिए नहीं अपितु सामान्य कहलाने वाले बालकों के लिए बनाए गए हों।
- **परागमन** – परागमन (ट्रॉंज़िशन) से तात्पर्य उस स्थिति से है जब विद्यार्थी एक प्रकार के विद्यालय से दूसरी तरह के विद्यालय में प्रवेश लेते हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में तरह-तरह के विद्यालय हैं जो विद्यार्थियों की ज़रूरतों के आधार पर बने हैं, जैसे– दृष्टिबाधितों आदि के लिए विशेष विद्यालय जहाँ विकलांगता के प्रकार के अनुसार सुविधाएँ उपलब्ध की जाती हैं, नियमित विद्यालय जहाँ विकलांगता को ध्यान में रखकर किसी तरह के प्रावधान नहीं होते। बहुत-से ऐसे बच्चे हैं जो दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में पढ़ने का अवसर प्राप्त करते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि परिस्थितियों के अनुसार उन्हें विद्यालय बदलना पड़ता है, कभी विशेष विद्यालय तो कभी नियमित विद्यालय। एक प्रकार के विद्यालय से दूसरे प्रकार के विद्यालय में जाना और वहाँ शैक्षिक सुविधाओं के लाभ उठाने, वहाँ बने रहने को 'परागमन' शब्द से संबोधित किया गया है।

अध्ययन हेतु न्यादर्श

अल्पकालिक अवधि वाले इस अध्ययन में मात्र 4 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

आशीष कुमार - बिहार के बरबीधा गाँव में जन्म हुआ। 5.6.1990 को जन्मे इस बालक में किसी प्रकार की अपंगता न थी। दूसरी कक्षा के बाद आँखों की रोशनी जाना शुरू हुई और तीसरी कक्षा तक आते-आते पूरी तरह से चली गई। गाँव के विद्यालय में ही (प्राइवेट) पढ़ाई आरंभ की। आँखों की रोशनी जाने के बाद मँझले भाई को साथ में बैठा दिया गया। मँझला भाई उसी विद्यालय में पहली श्रेणी में पढ़ता था। स्कूल के हेडमास्टर से निवेदन किया गया कि यदि आशीष का भाई उसकी कक्षा में उसके साथ-साथ रहे तो वह पढ़ने और लिखने तथा अन्य प्रकार की गतिविधियों में आशीष की मदद कर सकता है। अन्य अध्यापकों की ओर से किसी प्रकार की आपत्ति न होने पर आशीष के मँझले भाई को बिना परीक्षा के उसकी कक्षा में प्रवेश दिया गया। आशीष के लिए पढ़ने व लिखने का काम मँझला भाई ही करता था। पिता का आइसक्रीम बनाने का व्यापार है। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी अत: पटना के किसी अच्छे विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रयास किए गए परंतु सभी जगह मना कर दिया गया। अंतत: पटना में 3 महीने रहकर ब्रेल भाषा सीखी और फिर दिल्ली में जनता आदर्श संत विद्यालय सादिक नगर (विशेष स्कूल) में प्रवेश दिलाया गया। यह विद्यालय दसवीं कक्षा तक था। अत: किसी शिक्षक ने नूतन मराठी

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लिया। यह एक नियमित विद्यालय है। यहाँ से बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। संप्रति आशीष मं. शि. एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर. के. पुरम में ई.टी.ई. का कोर्स कर रहा है।

अनीता कुमारी – पोलियोग्रस्त 22 वर्षीय बालिका जो दिल्ली के उत्तमनगर में रहती है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा सामान्य नगर निगम के विद्यालय में हुई। चौथी कक्षा के दौरान अन्य बालकों की तरह पेड़ पर चढ़ने की कोशिश में औंधे मुँह नीचे गिरने से आँखों में गंभीर चोट आई। परिणामस्वरूप नेत्र ज्योति चली गई तत्पश्चात् इंदौर के अंधा विद्यालय में बारहवीं कक्षा तक पढ़ाई की और इसी वर्ष प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम आर. के. पुरम डायट से पूरा किया है।

सुदेश पाहूजा – दिल्ली के दक्षिण पश्चिम जिले के मसूदपुर क्षेत्र में रहने वाला 24 वर्षीय विद्यार्थी है। सुदेश जन्म से ही दृष्टिबाधित है। जीवन के शुरूआती सात वर्ष तक किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं लिया। अभिभावकों द्वारा यह ज़रूरत ही नहीं समझी गई कि इस तरह के बच्चों को भी शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की ज़रूरत है। जब सुदेश सात वर्ष का था, माँ की किसी दुघर्टना में मृत्यु हो गई अब सुदेश की देख-रेख का संपूर्ण दायित्व पिता एवं अन्य भाई-बहनों पर आ गया जो देख-सुन सकते थे। सुदेश अपने दैनिक कार्यों के लिए भी माँ पर निर्भर था। यह निर्भरता अब पिता व भाई-बहनों पर आ गई जिससे पिता के व्यवसाय (ड्राईक्लीनिंग की दुकान) व भाई-बहनों की स्कूली पढ़ाई में व अन्य गतिविधियों में भार पड़ने लगा। ऐसी स्थिति में सुदेश के पिता ने अपनी इस समस्या की चर्चा लगभग हर परिचित व्यक्ति से की। इस प्रक्रिया में सुदेश के भाई-बहनों की अध्यापिका ने आर. के. पुरम्, सैक्टर-1, नई दिल्ली के विशेष स्कूल के बारे में बताया। सुदेश ने पाँचवीं तक की शिक्षा आर. के. पुरम के विद्यालय तथा दसवीं की पढ़ाई विकासपुरी के विद्यालय से पूरी की। उसके अध्यापकों के अनुसार सुदेश अब आत्मनिर्भर बन चुका था।

सुदेश को भी परिवर्तन की चाहत थी। दो सरकारी विद्यालयों में प्रवेश न मिलने पर एक प्राइवेट विद्यालय वंदना इंटरनेशनल स्कूल में प्रवेश लिया जहाँ से बारहवीं की परीक्षा 56% से उत्तीर्ण की। पिछले वर्ष डायट, मोतीबाग से प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा का डिप्लोमा 62% अंकों से उत्तीर्ण किया है।

शशांक – डायट-आर. के. पुरम् का प्रशिक्षणार्थी है। शशांक को अपने जीवन के शुरूआती दौर में बहुत धुँधला दिखाई पड़ता था। वह संगम विहार का रहने वाला है। आस-पास कोई विद्यालय नहीं था फिर भी 3 कि. मी. की दूरी पूरी कर खानपुर, दुग्गल कॉलोनी के सरकारी विद्यालय में पढ़ने आता था। उसे इतना याद है कि श्यामपट्ट पर धुँधला दिखाई देने के कारण वह बार-बार प्रश्न पूछता था। अध्यापिका उसकी इस आदत से परेशान थी। वह खीझकर शशांक की पिटाई भी कर देती थी। कई बार शशांक आते-जाते अपने अध्यापकों व साथियों से टकरा जाता था।

सभी यह सोचते, विशेषकर अध्यापक कि यह जानबूझकर टकरा जाता है। अत: वह इस बात पर भी डाँट खाता। रोशनी इतनी कम थी कि वह आँखें पुस्तक से सटाकर पढ़ता था। कॉपियों पर खिंची लकीरें उसे स्पष्ट रूप से दिखती नहीं थीं, इसलिए लिखाई टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती, यह भी शशांक के पिटने का कारण होता। उसे एक उपद्रवी व नालायक किस्म का बच्चा समझा जाता और किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रम में शामिल नहीं किया जाता। ये सभी कारण शशांक का स्कूल छुड़वाने के लिए पर्याप्त थे।

स्कूल छोड़ने के बाद शंशाक का अधिक समय दोस्तों के साथ खेलने में बीतता। खेल के साथियों ने ही इस बात का खुलासा किया कि शंशाक को अच्छी तरह से दिखता नहीं है। दोस्तों के कहने पर ही शंशाक के नेत्रों की जाँच करवाई गई तो पाया गया कि उसके नेत्रों की रोशनी इतनी कम है कि सामने वाले व्यक्ति उसे मात्र छाया ही दिखाई पड़ते हैं। अब तक वह सभी को अपनी आवाजों व कपड़ों की खुशबू (ऐसा वह कहता है) के आधार पर पहचानता था। इलाज की संभावनाएँ न के बराबर थीं। उसे बताया गया कि आँख के अंदर जो चार नसें हैं उनमें से दो में रक्त प्रवाह बिल्कुल नहीं है। डॉक्टर ने ही सादिक नगर के जनता आदर्श संत विद्यालय में प्रवेश दिलवाया जहाँ से शशांक ने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तब तक संगम विहार में भी उच्चतर माध्यमिक स्तर का सरकारी विद्यालय खुल गया था। चूँकि शशांक के साथी वहीं जाने लगे थे, अत: उन्होंने उसे वहाँ दाखिला लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हें इस बात का पता नहीं था कि दृष्टिबाधित बच्चे भी अब सामान्य/नियमित विद्यालयों में प्रवेश पा सकते हैं। इसलिए वे प्रधानाचार्य से शशांक के दृष्टिबाधित होने की बात छिपा रहे थे। वे भूल गए थे कि उसे दसवीं का प्रमाणपत्र विशेष स्कूल से मिला हुआ है। प्रमाण-पत्रों से पता चल ही गया कि शशांक देख नहीं सकता, तमाम नाटक करने के बाद भी। पर यहाँ उन्हें निराश नहीं होना पड़ा और ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश मिल गया। शंशाक ने 58% अंकों से बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की और अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान में प्रवेश लिया। यह उसका दूसरा वर्ष है।

समग्र न्यादर्श पर एक नज़र

तालिका - 1

क्रम संख्या	नाम	आयु	विकलांगता का प्रकार	कब से	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्चतर माध्यमिक	उच्च शिक्षा
1.	आशीष	21 वर्ष	दृष्टिबाधित	8 वर्ष की आयु के बाद	सामान्य विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान

2.	अनीता कुमारी	22 वर्ष	पोलियो, दृष्टिबाधित	9 वर्ष की आयु में	सामान्य तथा नियमित विद्यालय	विशेष विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान
3.	सुदेश पाहूजा	24 वर्ष	दृष्टिबाधित	जन्म से	विशेष विद्यालय	विशेष विद्यालय	सामान्य तथा नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान
4.	शशांक	22 वर्ष	दृष्टिबाधित	6–7 वर्ष के बाद	सामान्य विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान

उपर्युक्त तालिका न्यादर्श के अंतर्गत लिए गए विद्यार्थियों की विकलांगता के प्रकार और स्तरवार शैक्षिक उपलब्धियों में परागमन की स्थिति को दर्शाती है।

शोधकार्य पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन की कार्य शैली के प्रमुख सोपानों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है–

- शोध कथन से संबद्ध संकल्पना के स्पष्टीकरण व स्पष्ट अवबोधन हेतु समावेशी शिक्षा से जुड़ी पुस्तकों, पत्रों का अध्ययन;
- पूर्व में किए गए शोध कार्यों का अध्ययन;
- शोधकार्य के लिए न्यादर्श का चयन जिनसे प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए आधार प्राप्त हुए;
- शोधकार्य से जुड़े तथ्यों का गहन अवलोकन एवं चर्चा

अवलोकन विधि – अवलोकन दत्त संग्रह की अति स्वाभाविक विधि है। इस विधि के द्वारा न्यादर्श के प्रत्यक्ष व्यवहार एवं कार्य प्रणालियों का अवलोकन कर उसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए।

वैयक्तिक अध्ययन – वैयक्तिक अध्ययन किसी व्यक्ति/संस्था/घटना विशेष के बारे में समग्र रूप से विवरण प्राप्त करने का अति प्राचीन और वैज्ञानिक तरीका है। वैयक्तिक अध्ययन के लिए शोध की किसी एक पद्धति पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। इसके लिए न्यादर्श की गतिविधियों का अवलोकन, औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से संवाद और उसके संबंध में आने वाले व्यक्तियों से बातचीत शामिल है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत चारों विद्यार्थियों का वैयक्तिक अध्ययन किया गया।

उपकरण – प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन स्वनिर्मित प्रश्नावली एवं चैकलिस्ट के द्वारा किया गया। प्रश्नावली के माध्यम से विद्यार्थी की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक उपलब्धियों एवं विद्यालयी जीवन के बारे में समझ विकसित की गई चेकलिस्ट के ज़रिए विद्यालयों में मिलने वाली सुविधाओं के बारे में सूचनाओं का संकलन किया गया।

प्रदत्त प्रदर्शन एवं विश्लेषण

अध्ययन द्वारा प्राप्त सूचनाओं एवं तथ्यों के प्रदर्शन एवं विश्लेषण से पहले यह आवश्यक है कि उद्देश्यों का पुनरावलोकन किया जाए संक्षेप में, अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- भिन्न रूप से सक्षम विद्यार्थियों की विभिन्न संदर्भों में ज़रूरतों के प्रति समझ पैदा करना;
- इन ज़रूरतों को पूरा करने के संबंध में इन विद्यार्थियों के भिन्न-भिन्न विद्यालयी परिस्थितियों से उपजे अनुभवों को जानना;
- नियमित एवं विशेष विद्यालयों के अंतरों को भिन्न रूप से सक्षम विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य से चिह्नित करना;
- प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं को मद्देनज़र रखते हुए नियमित विद्यालयों में समावेशी माहौल तैयार करने की आवश्यकता समझते हुए उन बिंदुओं की पहचान करना जो समावेशी परिवेश तैयार करने में मदद करते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में संग्रहीत सूचनाओं एवं तथ्यों को निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित एवं विश्लेषित किया गया है:

1. भौतिक एवं बुनियादी संरचना से जुड़े संदर्भ,
2. शिक्षणशास्त्रीय संदर्भ,
3. सामाजिक, भावनात्मक एवं संवेदनात्मक संदर्भ

भौतिक एवं बुनियादी संरचना से जुड़े संदर्भ

किसी भी कार्य विशेष को करने के लिए एक निश्चित प्रकार के परिवेश की आवश्यकता होती है। यूँ तो कोई भी कार्य कहीं भी किया जा सकता है परंतु गुणवत्तापरक परिणामों के लिए उस कार्य विशेष की प्रकृति के अनुसार परिवेश होना आवश्यक है। भिन्न रूप से सक्षम बच्चों के संदर्भ में अनुकूलित परिवेश की उपादेयता और भी अधिक बढ़ जाती है जिससे उन्हें अवरोधमुक्त माहौल मिले और गतिविधियों के संचालन में बुनियादी संरचना किसी प्रकार का अवरोध न बने। विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में भौतिक संदर्भ विद्यालय की इमारत, मुख्य दरवाज़ा एवं अन्य दरवाज़ों की स्थिति, कक्षा की स्थिति एवं माहौल, फर्नीचर का प्रकार, उसे रखने की प्रबंधन व्यवस्था, पेयजल का स्थान, शौचालय की स्थिति एवं बनावट, खेलने-कूदने का मैदान, प्रकाश आदि की व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। भौतिक परिवेश वह पहला बिंदु है जो यह संकेत देता है कि कार्यकलापों का संचालन सहजता से होगा या नहीं। अध्ययन के अंतर्गत लिए गए चारों विद्यार्थियों का यह मानना है कि भौतिक संदर्भों में विशेष विद्यालय

पूरी तरह से किसी भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चे का स्वागत करने के लिए तैयार हैं। वहाँ रैंप की सुविधाएँ, कक्षाएँ दूसरी मंज़िल पर न होकर भू-तल पर ही हैं। पेय जल, शौचालय व भोजन कक्ष की स्थिति ऐसी है कि एक बार किसी के द्वारा ले जाए जाने के बाद स्वयं को तथा दूसरे किसी को क्षति पहुँचाए बिना स्वयं जाया जा सकता है। खेलने के लिए भी विशेष तरह के उपकरण हैं। कक्षाओं में बैठने की स्थिति इस तरह की है कि न तो किसी दूसरे को अवरोध उत्पन्न होता है, न स्वयं को। प्रतिदिन के लिए बैठने का स्थान नियत है और सुरक्षात्मक भी है।

चारों विद्यार्थियों के अनुसार नियमित विद्यालयों की स्थिति इससे भिन्न है। मुख्य दरवाज़ों पर ही तीन अलग-अलग तरह के अवरोधक हैं जैसे– नीचे से उठी हुई जमीन, बड़े गेट में छोटा गेट, निकले हुए कुंडे फिर बिना किसी रेलिंग के लम्बा गलियारा जिसकी भूमि कहीं से उठी हुई है, कहीं से फर्श धँसा हुआ है। इसी तरह से बरामदे का फर्श भी कहीं-कहीं, चार फुट ऊँचा है तो कहीं जाकर नीचा हो जाता है जो अक्सर गिरने का कारण बनता है। शौचालय जाने के लिए सभी कक्षाएँ पार कर पूरा मैदान पार करना पड़ता है और मैदान भी खुला सपाट व समतल नहीं है। बीच में क्यारियाँ, गमले, पेड़-पौधे जो सजावट के लिए रखे गए हैं वे कई बार शारीरिक चोट पहुँचा चुके हैं। कक्षाओं में फर्नीचर की स्थिति में चार में से तीन विद्यार्थियों को फर्नीचर के संबंध में बहुत ही असुविधा हुई क्योंकि फर्नीचर अपनी जगह पर निश्चित (फिक्सड) है जिससे इधर-उधर मुड़कर बैठने में कठिनाई होती है। जबकि विशेष विद्यालयों की कक्षाओं में रखी गई कुर्सियाँ इधर-उधर की जा सकती हैं।

खेलने के मैदान में जिस तरह से झूलों की स्थिति है वह भी चोट का भय उत्पन्न करती है। कक्षाओं में बस्ता या अन्य प्रकार की व्यक्तिगत सामग्री रखने की पर्याप्त सुविधा नहीं है। कमरों में खिड़कियाँ इतनी ऊँचाई पर हैं कि उनकी दिशा व स्थिति पता होने पर भी आवश्यकतानुसार स्वयं खोला या बंद नहीं किया जा सकता और इसके लिए अपने साथियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उपर्युक्त प्रदर्शन से स्पष्ट होता है कि नियमित विद्यालयों की ढाँचागत सुविधाएँ समावेशन के लिए तैयार नहीं हैं। सभी बच्चों को अवरोधमुक्त परिवेश देना पहली शर्त है अतः इस दिशा में प्रयास आरंभ कर देने चाहिए, जैसे– मुख्य दरवाजे की स्थिति में सुधार, रैंप बनवाना, फर्श का समतल होना व दो तलों में किसी प्रकार का ध्वन्यात्मक संकेतक लगवाना। बैठने की व्यवस्था को भी नए सिरे से देखना होगा।

शिक्षणशास्त्रीय संदर्भ – शिक्षणशास्त्रीय संदर्भों को निम्नलिखित घटकों से चिह्नित किया गया है:

- विद्यार्थी की अद्वितीयता को पहचानते हुए उसके आत्मसम्मान की रक्षा और महत्त्व,
- कक्षा प्रबंधन की प्रणाली,
- अनुशासन की अवधारणा और व्याख्या एवं तरीके,

- पाठ्यचर्यक विषय एवं कौशल आधारित शिक्षण,
- अनुभव देने की पद्धतियाँ,
- शिक्षण सामग्री व पाठ्यपुस्तकें
- आकलन से जुड़े मुद्दे,
- गृहकार्य एवं प्रोजेक्ट कार्य,

शिक्षणशास्त्रीय संदर्भों का प्रदर्शन एक मिला-जुला स्वरूप प्रस्तुत करता है। पहले उपागम में स्थिति स्पष्ट थी कि बुनियादी संरचना के संबंध में नियमित विद्यालय विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की ज़रूरतों को पूरा कर पाने में असमर्थ हैं परंतु शिक्षणशास्त्रीय नज़रिए से देखा जाए तो संग्रहीत सूचनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि किन्हीं स्थितियों में उनकी ज़रूरतों का ध्यान रखा जाता है और कहीं-कहीं वे असुविधाओं का सामना करते हैं, जैसे –

कक्षा प्रबंधन – समय-तालिका बनाते समय उनकी ज़रूरतों का पूरा ध्यान रखा जाता है, किस विषय में उन्हें अतिरिक्त समय चाहिए, किस गतिविधि को वे अकेले कर सकते हैं, उन्हें किस समूह में करना ठीक होगा, उनके लिए अलग से कुर्सी कब और कहाँ डाली जाए, उनके बस्तों को कौन कहाँ रखेगा और ज़रूरत पड़ने पर कैसे उपलब्ध करवाया जाएगा, इन सब बातों का बहुत ही सहजता से प्रबंधन किया जाता है। कहीं से भी आभास नहीं होने दिया जाता कि हमारे लिए कुछ विशेष किया जा रहा है अर्थात् बहुत ही गरिमापूर्ण तरीके से हमारी उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है।

अनुशासन की अवधारणा एवं व्याख्या– चारों विद्यार्थियों के अनुभव बताते हैं कि विद्यालयी अनुशासन की अवधारणा के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से उन्हें नियमित विद्यालयों में अच्छा लगा। सामान्यत: विशेष विद्यालयों में उनके लिए सभी कुछ, यथा – बैठने का स्थान, खाने का समय, सहपाठियों से अनौपचारिक बातचीत का समय, मनोरंजन का समय पहले से ही नियत होता है जिससे एकरसता पैदा हो गई थी, एक विद्यार्थी द्वारा क्रम तोड़ने पर डाँट आदि की जगह यही कहा जाता था कि, "बाकी सब भी तुम्हारे जैसे हैं, वे कर सकते हैं तो तुम्हें क्या समस्या है?" या फिर कभी-कभी तो यह भी कहा जाता था कि "मरे को क्या मारना" इस तरह से ठेस पहुँचाई जाती थी परंतु नियमित विद्यालयों में यदि पूरी कक्षा को खड़ा होना होता तो उसमें ये विद्यार्थी भी शामिल हैं, जो इन्हें अच्छा लगता था। एक विद्यार्थी ने अपने अनुभव में बताया कि, "दीपावली के समय हमारी कक्षा के बच्चों ने चोरी-छिपे विद्यालय में पटाखे चलाए। पता चलने पर पूरी कक्षा को सज़ा मिली, मुझे छोड़कर। प्रधानाचार्या ने कहा कि इसे क्या कहना यह तो देख ही नहीं सकता। पर जब कक्षाध्यापिका ने कहा कि, "नहीं मैम, इसे भी सज़ा मिलनी चाहिए, यह भी तो कक्षा का हिस्सा है।" तो मुझे बहुत अच्छा लगा और ईमानदारी व गर्व के साथ सज़ा में हिस्सा लिया।"

विद्यालय में आने-जाने के समय, भोजन-अवकाश, छुट्टी प्रदत्त कार्यों को नियत समय पर देने आदि के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से नियमित विद्यालय बेहतर लगे।

अनुभव देने की पद्धतियाँ – इस बिंदु में पढ़ने-पढ़ाने के तरीके शामिल किए गए हैं।

विद्यार्थियों का कहना है कि यद्यपि उनके अध्यापक कक्षा में उनके सीखने-सिखाने के तरीकों का ध्यान रखते थे परंतु विशेष विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना में हमारी ज़रूरतों के अनुसार शिक्षण नहीं कर पाते थे। विशेष विद्यालयों के अध्यापक विशेष प्रकार की तकनीकें जानते थे जैसे – ब्रेल पढ़ पाना, विशेष प्रकार के भाषिक व अभाषिक संकेत देना, समूह में कार्य करवाना। परंतु नियमित विद्यालयों के अध्यापक इस संदर्भ में मात्र सामान्य बच्चों के अनुसार ही शिक्षण विधियों का उपयोग करते थे। जैसे– "फटाफट अमुक पुस्तक निकालो, देखो उस पर पृष्ठ संख्या अमुक, अच्छा अब फटाफट पन्ना पलटो, इस चित्र को ध्यान से देखो, समझ में आया या नहीं। देखो, श्यामपट्ट पर जो बिंदु लिख रही हूँ इन्हें कापी में उतार लो।" आदि।

चारों विद्यार्थियों का मानना है कि इस तरह का व्यवहार वे आदतन करते थे और भूल जाते थे कि चुनौतीपूर्ण बच्चे भी उनकी कक्षा में मौजूद हैं। विशेष रूप से याद दिलाने पर वे अपनी शिक्षण पद्धति में बदलाव लाने का प्रयास अवश्य करते थे। प्रदर्शन से स्पष्ट है कि नियमित विद्यालयों के अध्यापकों को शिक्षण पद्धतियों में विविधता वाली स्थितियों के अनुसार प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

शिक्षण सामग्री व पाठ्यपुस्तकें – चार विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी को छोड़कर शेष तीन के अनुसार नियमित विद्यालयों में तुलनात्मक रूप से शिक्षण सामग्री का अभाव तो है ही और जो हैं भी वे उनकी ज़रूरतों को पूरा नहीं करतीं जैसे – विशेष विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकें ब्रेल में मिलती थीं, वहाँ पर एक पत्रिका भी ब्रेल में आती थी, उभरे हुए नक्शे, थ्री डायमेंशनल मॉडल हुआ करते थे। कुछ पुस्तकों की रिकॉर्डिंग भी उपलब्ध थी।

नियमित विद्यालयों में इस प्रकार की सुविधाएँ नहीं थीं। अत: व्यक्तिगत प्रयास करके यह सब जुटाया गया पर तब तक काफी कुछ पढ़ाया जा चुका था। यद्यपि अध्यापकों ने पुन: पढ़ाने में मदद की परंतु पूरी कक्षा के साथ चलना अधिक रोचक लगा। पाठ्यचर्यक विषय के संदर्भ में जानकारी दी गई कि गणित में ज्यामितीय भाग भी अनिवार्य था परंतु निवेदन करने पर उससे संबंधित सवालों का रूप बदला गया। उस विषय में उन्हें बहुत कठिनाई हुई और उनके अंक भी बहुत कम आए। जहाँ-जहाँ 'डायग्राम' उत्तर देने का मुख्य आधार होते थे, वहाँ उन्हें कम अंक प्राप्त हुए। प्रस्तुत प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से पाठ्यचर्यक निरूपण (करीकुलर अडैप्टेशन) की ओर संकेत करता है।

आकलन से जुड़े मुद्दे, गृहकार्य आदि – चारों विद्यार्थियों से प्राप्त सूचनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि तुलनात्मक रूप से नियमित विद्यालयों में चल रही आकलन की प्रक्रिया निरंकुश प्रतीत हुई यद्यपि यहाँ उन्हें अच्छा लगता था कि उन्हें अपने से अलग और तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम बच्चों से प्रतिस्पर्धा करनी है परंतु बहुत-सी

अभावजन्य स्थितियों के कारण उत्साह क्षीण हो जाता था, जैसे–

- प्रश्न-पत्रों पर निर्भरता अधिक थी, प्रश्नपत्र ब्रेल में उपलब्ध नहीं हुए न ही 'रिकॉर्डेड' रूप में मिले।
- 'लिखने वाले' के लिए अनुमति प्राप्त करना, उसकी खोज करना एक जटिल प्रक्रिया लगी। विशेष विद्यालयों में इस तरह के प्रावधान प्रशासन की ओर से ही जुटाए जाते थे।
- कुछ प्रश्न ऐसे पूछ लिए जाते थे जो पूर्व अनुभवों पर आधारित नहीं थे जैसे– "अपने घर से विद्यालय आते हुए रास्ते में जो-जो देखा, उसका वर्णन करते हुए अपने मित्र को पत्र लिखो।"
- परीक्षा की तैयारी के संदर्भ में अतिरिक्त समय देने का प्रावधान कभी नहीं मिला। चारों विद्यार्थी इस बारे में सहज नहीं थे। मूल्याँकन से जुड़ी घटना बताते हुए, "मुझे वार्षिक परीक्षा हेतु प्रवेश पत्र दिया गया। मैंने केंद्र व समय के बारे में पूछा। कहा गया जो सबका है वही तुम्हारा है।" मैंने समझा कि जो पहले वर्ष था वही अब होगा। इसी समझ के साथ मैं केंद्र पर पहुँचा। पर परीक्षा हो चुकी थी। क्योंकि इस बार परीक्षा का समय शाम को नहीं सुबह था। यदि मुझे ब्रेल में प्रवेश पत्र मिलता या पढ़कर बताया जाता तो मैं परीक्षा से वंचित न रह जाता। मेरी 'री -एपीयर' आई तो मुझे बहुत शर्म आई अपने-आप पर।
- इस तरह से दूसरे विद्यार्थी ने बताया कि 'चौथे पेपर वाले दिन मैं अपने परीक्षा केंद्र के नज़दीक एक गड्ढे में गिर गया, केंद्र में पहुँचने तक पेपर शुरू हो चुका था, समय अतिरिक्त सिर्फ उतना ही मिला जितना पहले से मिलना निर्धारित था। मेरी कुहनियाँ छिली हुई थीं, लिख नहीं पा रहा था। परिणाम यह हुआ कि उस विषय में मैं फेल हो गया, यहाँ पर मेरी क्या गलती थी?"

प्रस्तुत अभिव्यक्तियाँ निश्चित रूप से पुनः अवलोकन की माँग करती हैं।

सामाजिक, भावनात्मक एवं संवेदनात्मक संदर्भ – चारों विद्यार्थियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि नियमित विद्यालयों में तुलनात्मक रूप से अनेक कमियाँ थीं परंतु भावात्मक स्तर पर उन्हें नियमित विद्यालयों में ही अच्छा लगा। मानवीय गरिमा की अनुभूति उन्हें नियमित विद्यालयों में हुई इस संबंध में उनके तथ्य थे:

- सभी बच्चे हमारे जैसे नहीं थे, वे तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम थे, उनके साथ पढ़ना अधिक चुनौतीपूर्ण लगा। विशेष विद्यालयों में सभी नेत्रहीन थे। अतः कुछ भी करना विशेष अर्थ नहीं रखता था।
- जहाँ सभी बच्चे जाते हैं, मैं भी वहीं जाता हूँ और वह सब कुछ करता हूँ जो वे सब करते हैं, यह सोचकर मेरा अपने प्रति सम्मान बढ़ता गया जबकि विशेष विद्यालय में विशेष सुविधा होने पर भी मैंने स्वयं को महत्वपूर्ण नहीं माना।

- विद्यार्थियों द्वारा विशेष व्यवहार न करके सामान्य व्यवहार करना भावात्मक रूप से बहुत अच्छा लगा। "अपने आपको एलियन या अंधा न मानकर उन्हीं जैसा माना। जब सहपाठी अपने साथ खो-खो, पिट्ठू, विषमृत खिलाते थे। वे जैसा दूसरों से कहते थे, वैसा ही मुझसे भी कहते थे, "ओ अनीता दौड़, देख पिट्ठू पीटना है, जल्दी ला ना बॉल।"..... सभी बच्चों की तरह मुझे भी डेन देनी पड़ती थी। मेरा दिल खुशी से भर जाता था। पर विशेष स्कूल में डेन देना कभी अच्छा नहीं लगा। सभी मेरे जैसे ही तो थे वहाँ पर।" ..... जब क्रमांक के अनुसार औरों की तरह कमांड देने, श्यामपट्ट साफ करने की मेरी बारी आती, मुझे बहुत मज़ा आता था। ज़रूरत पड़ने पर साथी अपने-आप आगे आते और सहज भाव से मदद करते, बिना यह जताए कि मैं देख नहीं सकती। कई बार मैंने भी उन बच्चों को उत्तर लिखवाने में मदद की।"

उपर्युक्त तथ्य एवं टिप्पणियाँ स्पष्ट करते हैं कि बच्चे चाहें वे चुनौतीपूर्ण हैं अथवा नहीं वे सभी एक साथ खेलना, पढ़ना, सीखना पसंद करते हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे विशेष प्रकार की सुविधाओं के बावजूद भी तुलनात्मक रूप से विशेष विद्यालय की अपेक्षा नियमित विद्यालयों में मानवीय अनुभूतियों के बीच पलते-बढ़ते हैं। उनकी इस भावात्मक व सामाजिक आवश्यकता का सम्मान करते हुए हमें नियमित विद्यालयों के मौजूदा स्वरूप में थोड़े बहुत परिवर्तन करने होंगे जैसे– बुनियादी ढाँचागत सुविधाओं में फेर-बदल, शिक्षण-सामग्रियों, शिक्षण पद्धतियों व मूल्यांकन के तरीकों में फेर-बदल, समय-सारणी में समयानुसार परिवर्तन, पाठ्यपुस्तकों की समयानुसार व आवश्यकतानुसार उपलब्धता आदि और इन सबसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है दृष्टिकोण जो स्वीकृति की अपेक्षा करता है। विद्यार्थियों के अनुभव स्पष्ट करते हैं कि हमारे विद्यालय अभी 'इंक्ल्यूसन' के लिए तैयार नहीं हैं, परंतु उन्हें तैयारी करनी होगी क्योंकि विशेष शिक्षा की अलग से व्यवस्था सामाजिक अलगाव और चुनौतीपूर्ण बच्चों को सामाजिक रूप से व भावात्मक रूप से अकेलेपन की ओर ले जा रही है। यहाँ पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

रेखाचित्रों की बदलती भूमिका

राजेश कुमार निमेश*

इस आलेख को लिखने का उद्देश्य अध्यापकों व रेखाचित्र के क्षेत्र में रुचि रखने वाले बच्चों को रेखाचित्र की परिभाषा, उसका इतिहास, उद्देश्य, प्रकार, इसमें नयी तकनीक का समावेश, रेखाचित्रों की शैली, बाल साहित्य में रेखाचित्रों के महत्त्व व उपयोगिता के साथ-साथ इस क्षेत्र में व्यावसायिक संभावनाओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इस आलेख को पढ़ने के बाद पाठक यह निर्णय लेने में सक्षम होंगे कि उन्हें अगर रेखाचित्रकार बनना है तो रेखाचित्रण के किस क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल करें। इस आलेख के अंतर्गत रेखाचित्रण की बारीकियों पर विस्तार से चर्चा की गई है, तथा रेखाचित्रकार के रूप में बच्चों के समक्ष रेखाचित्रों की उपयोगिता के पहलुओं से अवगत कराना है।

किसी उद्देश्य के लिए किसी भी धरातल पर उकेरी या बनाई गई आकृतियों को रेखाचित्र कहते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य भावों की अभिव्यक्ति करना होता है। सही मायने में रेखाचित्रों को व्यक्त करने के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं होती और वही रेखाचित्र सफल होते हैं जो भावों, विचारों व संकल्पनाओं का संचरण स्वत: ही करते हैं।

पुराने समय में रेखाचित्र रोजमर्रा की वस्तुओं पर बनाए जाते थे लेकिन आज इसका विषय क्षेत्र काफी बढ़ गया है। यह समय बिताने या शौक पूरा करने की कला न होकर व्यावसायिक अथवा रोज़ी-रोटी कमाने की कला हो गई है।

रेखाचित्रों के माध्यम से किसी भी विषय को आसानी से समझा जा सकता है। रेखाचित्रों की सहायता से हम ऐतिहासिक तथ्यों, शारीरिक रचनाओं, तकनीकी ज्ञान एवं अन्य विषयों को आसानी से समझ सकते हैं।

रेखाचित्र व उनका प्रभाव

रेखाचित्रकार का उद्देश्य सर्वदा भावों को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करना होता है और

* *असिस्टेंट प्रोफेसर*, सी.आई.ई.टी, एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली -16

Ch-4.indd 75 5/20/2014 9:47:31 AM

वह इस कार्य में किस हद तक सफल होते हैं इसका पता उनके द्वारा बनाए चित्रों को देखकर लगाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, जब हम पुस्तक के पन्ने पलटते हैं तो हमारा ध्यान अनायास ही किसी रेखाचित्र पर जाता है जो किसी भी आलेख को समझने या रोचक बनाने में सहायक होता है। यहाँ तक कि पूरी कहानी रेखाचित्रों पर आधारित हो सकती है जिसमें चित्रकार कहानियों में पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण करता है और उसके मन में कहानी का क्या रूप है, पात्र कैसे हैं? इसका पता चलता है। चित्रकार प्रकाश, छाया और रंगों की सहायता से कभी-कभी जीवित पात्र का निर्माण करता है। वह पाठक के मन को स्थिर करता है और कहानी के विचार एवं भावनाओं को जानने में मदद करता है।

हर चित्र का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। जब भी किसी चित्र का जन्म होता है तो वह चित्र अपने अनंत सौंदर्य के साथ जन्म लेता है। वैसा चित्र न तो पहले बना होता है और न भविष्य में ही बन सकता है। वह ढली हुई वस्तु की तरह एक जैसा नहीं निकलता। अत: सार यह है कि अगर किसी वस्तु का संश्लेषण होकर वह वस्तु चित्रित हुई है तो वह अपना एक विशिष्ट रूप लेकर दर्शक के सम्मुख प्रकट होती है। अत: आधुनिक युग में हमें आवश्यकता है तरह-तरह से देखने-परखने वाली दृष्टियों की, नवीन एवं भिन्न-भिन्न विधियों की तथा विश्लेषणात्मक उपकरणों की जिसमें जब किसी भी विषय को चित्रित किया जाए, वह विषय अपने महत्त्व एवं गुण के साथ प्रभावशाली ढंग से प्रकट हो। बालक की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज़ उसकी गलतियाँ हैं और जितना इन गलतियों को शिक्षक सुधारता जाएगा उतनी ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन वह कृति बन जाएगी।

अनेक अध्ययनों के आधार पर पाया गया है कि कला विद्यालयीय पाठ्यक्रम के गणित, विज्ञान और अन्य विषयों से अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव में, अन्वेषकों ने अन्वेषण के आधार पर पता लगाया है कि कला की अनुपस्थिति बालकों के मस्तिष्क के विकास को अवरुद्ध कर सकती है।

कला सीखने का मतलब केवल हाथ के काम में दक्षता हासिल करना नहीं होता। कला शिक्षा के पीछे व्यक्ति के चरित्र, उसके सामाजिक-बोध और सौंदर्य-बोध का विकास करने का उद्देश्य होता है। कला शिक्षा में हाथ का काम कला कौशल तो साधन मात्र है, साध्य तो गुण विकास है।

आजकल रेखाचित्रों की मांग बढ़ी है, इसका एक मात्र कारण यह है कि पुस्तकों, पत्रिकाओं, फिल्म एवं विज्ञापनों में स्टोरी बोर्ड बनाते समय रेखाचित्रों की सहायता ली जाती है। एनीमेशन फिल्म तो पूरी ही रेखाचित्रों पर आधारित होती है, जिसमें एक साथ कई कलाकार कार्य करते हैं। इसमें दो राय नहीं कि रेखाचित्र लिखे हुए शब्दों से कहीं ज़्यादा प्रभाव छोड़ते हैं। रेखाचित्रों के क्षेत्र में कई आयाम हैं। इसीलिए जो चित्रकार रेखाचित्र द्वारा प्रभावशाली ढंग से अपनी बात

या विषय को रखता है, उनके लिए अवसरों की कोई कमी नहीं है।

इतिहास

माना जाता है कि रेखाचित्रों का इतिहास इतना पुराना है, जितना पाषाण युग का मानव, जहाँ चित्रों को गुफाओं की दीवारों और पेड़ों की छाल पर गोदकर भावों की अभिव्यक्ति की जाती थी। जन-जातीय समुदाय में इस प्रकार की कला मूलरूप में प्रमाण के रूप में है, जो न केवल आकृतियों को गुफाओं की दीवारों पर बनाते थे अपितु अपने आपको रंग भी लिया करते थे

जिनका मुख्य उद्देश्य दिग्दर्शन (Visual Presentation) प्रस्तुतिकरण होता था। पुराने समय में रेखाचित्र रोजमर्रा की वस्तुओं या विषयों पर बनाए जाते थे जिनसे उनके जीवन के जीने के तरीकों व समाज में उनके आपसी संबंधों का पता चलता है। इस प्रकार के रेखाचित्र गुफाओं की दीवारों पर मिल जाते हैं। प्रागैतिहासिक काल की कला के संबंध में प्राचीन गुफाएँ और चट्टानें आदि ही ऐसे प्रमाण हैं जिनसे इस पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार के अनेक चित्रों से यह स्पष्ट है कि अब तक मानव सभ्यता ने कितनी प्रगति की है। गुफाओं और चट्टानों में अंकित चित्रों को देखकर यह ज्ञात होता है कि मनुष्य ने अपनी चेष्टाओं, रुचियों और आकांक्षाओं को प्रकट करने के लिए ललित कलाओं का प्रयोग किया। स्पेन, फ्रांस, दक्षिणी रोडेशिया, पेरू, अलास्का, लाओस, मध्य एशिया और भारत आदि अनेक देशों में आदिकाल की अनेक गुफाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के चित्र अंकित हैं। अनेक विद्वानों ने इनका समय ईसा पूर्व 50,000 से लेकर 10,000 वर्ष तक रखा है। ये अवशेष उस समय के दिखते हैं, जब मनुष्य ने आदिम पाषाण युग से निकलकर नवपाषाण काल में प्रवेश किया था।

मनुष्य के आदि प्रादुर्भाव का काल, समय और परिस्थितियों का ज्ञान जिस प्रकार अभी तक नहीं हो पाया, उसी प्रकार यह कहना भी बड़ा कठिन है कि कला का उदय कब हुआ। आज हमारे पास उन प्रमाणों का सर्वथा अभाव है, जिनके आधार पर हम कला के उदय काल के बारे में कुछ कह सकें।

शायद भावों की अभिव्यक्ति के लिए चित्रकला का सबसे पुराना रूप दिग्दर्शन कला है। आदिमानव पत्थरों पर रेखाएँ खींचकर लम्बे समय तक संभालता था। इन आदि काल के चित्रों को संभाल कर ही नहीं रखता था बल्कि वह सृजन करने में भी सक्षम था।

रेखाचित्रों के उद्देश्य

रेखाचित्रकला चित्रों द्वारा कहानी-वाचन या कहने की कला है जो शब्दों को आसानी से

रेखाचित्रों में अनूदित करती है जिसका प्रभाव शीघ्र होता है। इनका उपयोग कई उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- वैज्ञानिक तथ्यों के लिए
- नये उत्पाद के लिए
- कविता एवं कहानी के लिए
- व्यक्तिगत विचारों की अभिव्यक्ति के लिए

रेखाचित्रों के प्रकार

रेखाचित्र को हम दो भागों में बाँट सकते हैं, जैसे–

1. *तकनीकी रेखाचित्र* – तकनीकी प्रवृत्ति वाले विषयों को रेखाचित्रों के माध्यम से संप्रेषित किया जाता है जिसके अंतर्गत हम अभियांत्रिकी रेखाचित्र, वास्तुकारी रेखाचित्र, ऐनोटॉमी रेखाचित्र व वस्तुओं को समझने हेतु बनाए जाने वाले रेखाचित्रों को शामिल कर सकते हैं।
2. *गैर-तकनीकी रेखाचित्र* – गैर-तकनीकी का उपयोग मुख्य रूप से कहानी, इमेजिनेशन व विचारों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है।

वास्तुकारी रेखाचित्र

वास्तुकारी के लिए बनाए जाने वाले रेखाचित्र मुख्य रूप से पैमाने की सहायता से बनाए जाते हैं। इस प्रकार के रेखाचित्र अक्सर ऐतिहासिक आलेखों में मिलते हैं, जो मुख्यत: भवनों या इमारतों को दिखाते हैं। इनमें रेखाएँ नपी-तुली होती हैं। इस प्रकार के चित्र बनाने के लिए संदर्भों की ज़रूरत होती है।

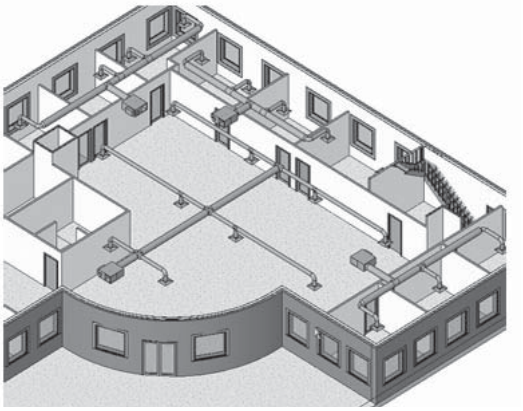

वास्तुकारी संबंधित चित्र उस घर का तकनीकी चित्र होता है, जो घर वास्तुकारी के क्षेत्र में आता है। इस प्रकार के चित्र वास्तुकार द्वारा विभिन्न कार्यों के लिए बनाए जाते हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- पहले से निर्मित भवन का लेख प्रमाण तैयार करने के लिए।
- नए भवन का वास्तुचित्र तैयार करने के लिए।
- विचार एवं अवधारणा के संप्रेषण हेतु।
- उपभोक्ता को प्रभावित करने के लिए।

ऐनोटॉमी रेखाचित्र

ऐनोटॉमी चित्रण विशेष रूप से मानव की बाहरी व आंतरिक शारीरिक रचना का चित्रण करना है। इस प्रकार के रेखाचित्र शरीर के

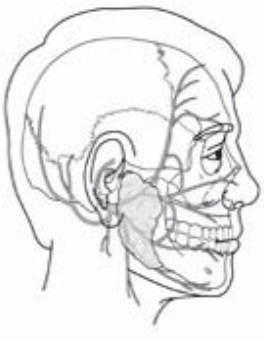

प्रत्येक अंग की बनावट व उसके क्रियाकलापों को समझने में विज्ञान एवं मेडिकल के छात्रों की विशेष रूप से बहुत मदद करते हैं। इस प्रकार के रेखाचित्र बनाने के लिए रेखाचित्रकार को विशेष प्रकार के प्रशिक्षण व ज्ञान की आवश्यकता होती है।

अभियांत्रिकी (Mechanical) रेखाचित्र

कुछ रेखाचित्र वस्तुओं, जैसे– बिजली की मोटर, पंखा आदि को एक-दूसरे से कैसे जोड़ते हैं या पुर्जों को जोड़कर एक संपूर्ण वस्तु कैसे बनती है, को दिखाने के लिए बनाए जाते हैं। इन रेखाचित्रों को मैकेनिक ड्रॉइंग कहते हैं। ये रेखाचित्र इंजीनियर और ड्राफ्टमैन द्वारा बनाए जाते हैं।

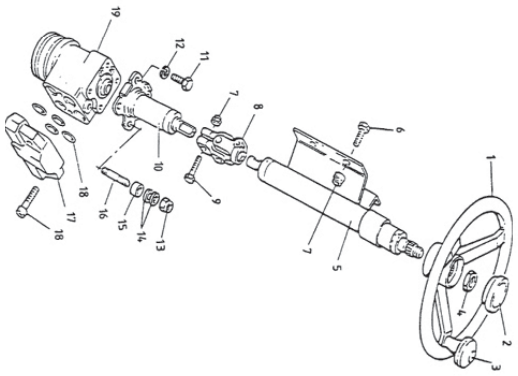

व्याख्यात्मक रेखाचित्र

वस्तुओं की व्याख्या करने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा परमाणु का एक अंश भी दिखाया जा सकता है और ब्रह्माण्ड को भी दिखाया जा सकता है। इसके द्वारा देश की जलवायु या विभिन्न प्रकार के

रेखाचित्रों द्वारा छोटे-से-छोटा एवं बड़े-से-बड़े भाग का वर्णन किया जा सकता है। इसी तरह कभी-कभी बड़ी वस्तुओं, जैसे–जिला, राज्य, देश, महाद्वीप और महासागर के बारे में जानने के लिए रेखाचित्रों की सहायता लेनी पड़ती है। इस प्रकार के नक्शों के रेखाचित्र कार्टोग्राफ़र द्वारा भी बनाए जाते हैं।

वस्तुओं को समझने हेतु

एक प्रकार के रेखाचित्र को वस्तुओं को समझने के लिए उन्हें उनके वास्तविक रूप से कई गुना बड़ा करके बनाया जाता है ताकि आसानी से उसके प्रत्येक भाग का अध्ययन किया जा सके।

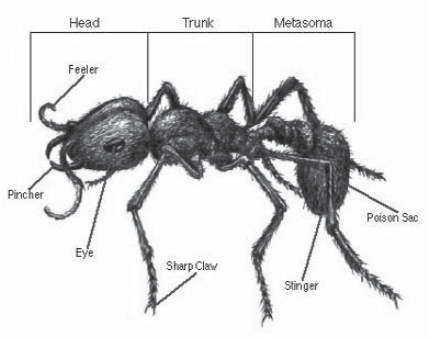

कभी-कभी हम वास्तविक वस्तु देखकर उसके बारे में नहीं समझ पाते क्योंकि वह इतनी छोटी होती है कि उसे नंगी आँखों से नहीं देख पाते। रेखाचित्रों की सहायता से हम उस वस्तु को आसानी से समझ सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, चींटी एवं उसके भागों को देखना बहुत ही मुश्किल होता है, इसलिए हमें उसका रेखाचित्र बनाकर समझना पड़ता है।

कहानी वर्णन हेतु रेखाचित्र

रेखाचित्रों के बिना पुस्तकों में छिपे ज्ञान का अध्ययन करना उतना ही कठिन है जितना बंद आँखों से संसार को देखना। शायद यही तथ्य पुस्तक में रेखाचित्रों के अस्तित्व को बनाने में सहायक रहे होंगे।

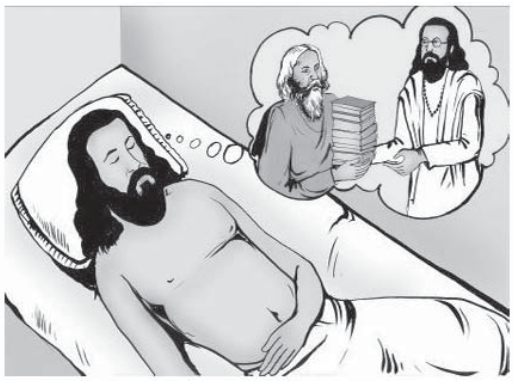

लगभग 15वीं सदी से पहले पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं। 476-1492 ईसवी के मध्य में रेखाचित्र पुस्तकों में दिखाई दिए। इन पुस्तकों में पृष्ठ के रूप में बकरी व गाय के चमड़े का उपयोग किया जाता था तथा रेखाचित्रों को सोने की परत से सजाया जाता था। लगभग 15वीं सदी से लेकर 18वीं सदी के बीच पुस्तक वुडकट में उपलब्ध होने लगी। तथा इसको दुबारा छापने में एंग्रेविंग और एचिंग का उपयोग भी शुरू हुआ।

कुछ रेखाचित्र कहानी, कविताओं, धार्मिक ग्रंथों, यात्रा वर्णन, आदि में देने के लिए बनाए जाते हैं जिन्हें हम पत्रिकाओं और अपनी पाठ्यपुस्तकों में भी देखते हैं।

फैशन रेखाचित्र

फैशन रेखाचित्र फैशन के संचार हेतु बनाए जाते हैं जो ड्रॉइंग और पेंटिंग से प्रजनित या उत्पन्न होते हैं। आमतौर पर फैशन पत्रिकाओं में एक भाग के रूप में संपादकीय या विज्ञापन के उद्देश्य से और फैशन निर्माताओं, फैशन बुटीक और डिपार्टमेंटल स्टोर को बढ़ावा देने के प्रयोजन से बनाए जाते हैं।

पोशाक चित्रण का इतिहास काफी पुराना माना जाता है। फैशन डिज़ाइन में रेखाचित्र का उपयोग बहुतायत में होता है। जब भी नयी

पोशाक का डिज़ाइन या निर्माण करना होता है, तो पहले उसे स्केच पेपर पर बनाकर देखते हैं। तथा बाकायदा मानव आकृति बनाकर वस्त्रों के कई रेखाचित्र या डिज़ाइन बनाते हैं, जिससे उसके आउटलुक का पता चलता है।

एनिमेशन रेखाचित्र

एनिमेशन एक प्रकार से सुंदर रेखाचित्रों का शृंखलात्मक गठबंधन है, जो एक-एक करके हमारी आँखों के सामने से गुज़रते हैं जिससे हमें उनमें गति का आभास होता है।

आजकल एनिमेशन कई प्रकार से बनाई जाती है। ज़रूरी नहीं कि इसमें रेखाचित्रों का उपयोग ही हो, जैसे– मॉडल एनिमेशन जिसमें पात्रों एवं दृश्यों के मॉडल बना लिए जाते हैं तथा बाद में स्टॉप मोशन तकनीक द्वारा एनिमेशन फिल्म का निर्माण किया जाता है। परंतु इस प्रक्रिया की योजना में मॉडल के स्केच, दृश्यों के स्केच और पात्रों के स्केच बनाने की शुरूआत रेखाचित्रों से ही होती है।

जब हम एनिमेशन की बात करते हैं, तो सर्वप्रथम हमारे ज़ेहन में वॉल्ट डिज़्नी का नाम अनायास ही आ जाता है। क्योंकि एनिमेशन में

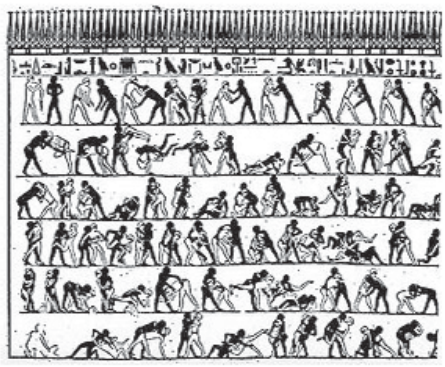

क्रांतिकारी परिवर्तन उनके द्वारा ही लाए गए। उनके समय में जिस तकनीक का इस्तेमाल होता था, उसे सेल एनिमेशन तकनीक कहते हैं। इसके अंतर्गत हर चित्र को एक सेल (पारदर्शी सीट) पर स्याही व रंगों की सहायता से शृंखला में बनाते हैं।

रेखाचित्रों के बिना एनिमेशन फिल्म बनाने की कल्पना करना भी असंभव है। क्योंकि एक-एक रेखाचित्र बनकर ही पूरी एनिमेशन फिल्म का निर्माण होता है। जब एनिमेशन के लिए आलेख लिख लिया जाता है, तो रेखाचित्रों की सहायता से स्टोरी बोर्ड बनाया जाता है। कहानी में मुख्य-मुख्य परिस्थितियों (Key frames) का क्रमानुसार चित्रांकन किया जाता

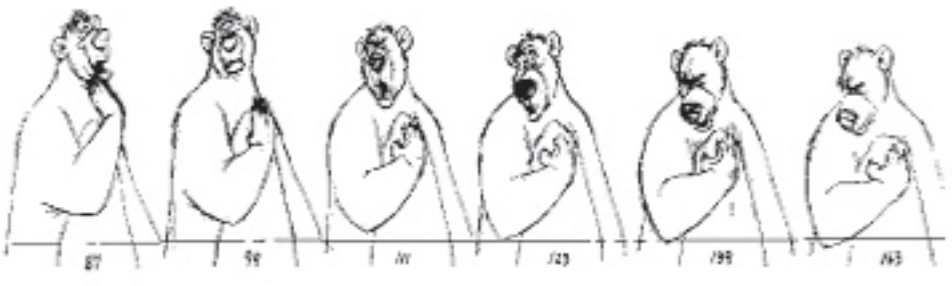

है। चित्रों के दाईं ओर संवाद लिखे जाते हैं जो रेखाचित्रों की सहायता करते हैं, जिसे स्टोरी बोर्ड कहते हैं। हर एक क्रिया के लिए अलग-अलग रेखाचित्र बनाए जाते हैं।

कार्टून रेखाचित्र

कार्टून रेखाचित्र एक प्रकार के हास्यास्पद रेखाचित्र होते हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। इस प्रकार के क्रियाकलापों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर हास्यास्पद तरीके से प्रस्तुत करते हैं कि व्यक्ति किस तरह महसूस एवं प्रतिक्रिया करता है। ऐसे रेखाचित्र गेग कार्टून,

संपादकीय कार्टून, कॉमिक्स स्ट्रिप, कॉमिक पुस्तक, ग्राफिक नॉवेल और एनिमेशन में देखे जा सकते हैं। कार्टून के रेखाचित्र सर्वप्रथम पेंसिल की सहायता से पेपर पर बनाए जाते हैं बाद में इन्हें स्याही या रंगों द्वारा पूरा किया जाता है। आजकल कार्टूनिस्ट परंपरागत तरीके छोड़कर डिजिटल मीडिया का सहारा लेते हैं जिससे छपाई या इलेक्ट्रॉनिक्स माध्यमों में आसानी से उपयोग किया जा सकता है।

कैरीकेचर

कैरीकेचर इतालवी शब्द 'caricare' से लिया गया है जिसका अर्थ व्यक्ति का भावात्मक चित्रण है। यह कैरीकेचर अतिरंजित या उसका विकृत रूप हो सकता है जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है। साहित्य में कैरीकेचर का अर्थ व्यक्ति का संक्षिप्त ब्यौरा देना है।

कैरीकेचर अपमान या मानार्थ हो सकते हैं। यह राजनैतिक उद्देश्य के लिए व मनोरंजन के लिए भी बनाए जाते हैं।

कैरीकेचर पत्र-पत्रिकाओं में संपादकीय के लिए, कार्टून फिल्मों के लिए, तथा फिल्मी सितारों के कैरीकेचर मनोरंजन पत्रिकाओं में पाए जाते हैं।

बाल साहित्य में रेखाचित्र

बाल साहित्य का नाम लेते ही हमारे सामने बच्चे और चित्रों की दुनिया आ जाती है। दोनों एक दूसरे के पर्याय माने जा सकते हैं, क्योंकि

रंग-बिरंगे रेखाचित्र अनायास ही अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर लेते हैं जिससे विषय-वस्तु बच्चों को रोचक एवं सरल लगने लगती है। अगर हम पाठ्यपुस्तकों की बात करें तो आज किसी भी पाठ्यपुस्तक को उठाकर देखने पर हम पाएँगे कि इनके बिना पुस्तकों का कोई भी वजूद नहीं है। आज विश्व का कोई भी बाल साहित्य चित्रों से अछूता नहीं है। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि बच्चे रेखाचित्रों के माध्यम से विषय को सरलता से समझ लेते हैं।

रेखाचित्रों में परंपरागत तकनीकी का उपयोग

परंपरागत रेखाचित्रण मुख्य रूप से जलरंग, पेन, स्याही, एयरब्रश आर्ट, तैलीय चित्र, पेस्टल कलर, वुडएनग्रेविंग, और लीनोकट के द्वारा बनाए जाते हैं। इन माध्यमों का उपयोग प्रत्येक कलाकार करता रहा है। परंपरागत रेखाचित्रों को बनाने के लिए या रेखाचित्रकार बनने के लिए किसी भी फॉर्मल शिक्षा की ज़रूरत नहीं है। फिर भी रेखाचित्रकार विद्यालय या कला विद्यालय से शिक्षा लेते हैं। जहाँ उन्हें नयी-नयी तकनीकों से अवगत कराया जाता है।

नयी तकनीक का समावेश

पत्र-पत्रिकाओं और टेलीविजन की शक्ति बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इसलिए रेखाचित्र की अपनी अहमियत भी बढ़ी है। फलस्वरूप कलाकार के सामने बहुत से नये अवसरों के साथ-साथ रेखाचित्रों के निर्माण में नयी-नयी तकनीक का उपयोग भी बड़ी तेजी से बढ़ा है।

अब रेखाचित्र पेंसिल, चारकोल, स्याही या

तूलिका की सहायता से ही नहीं बनाए जाते अपितु, समयानुसार इन्हें बनाने की तकनीक तथा सामग्री में काफी परिवर्तन आया है जिसके माध्यम से रेखाचित्रों के निर्माण में निम्नलिखित कार्य करने में काफी मदद मिलने लगी:

- प्रतिलिपियाँ बनाने में
- रंगों का चयन करने में
- मूलचित्रों में बदलाव करने में
- विभिन्न प्रकार के प्रभाव पैदा करने में
- तकनीकी रेखाचित्रों को बनाने में

कंप्यूटर

आज रेखाचित्रों को बनाने के लिए कंप्यूटर की सहायता ली जाती है जिसमें नये-नये सॉफ्टवेयर जैसे- एडोब इलस्ट्रेटर, पेंटर क्लासिक, एडोब फोटोशॉप, फ्लैश, कोरल ड्रा, 3डी मैक्स और माया सॉफ्टवेयर की सहायता से दो आयामी एवं तीन आयामी रेखाचित्र बनाए जाते हैं। बस आपको डिजिटल पेंट टेबलेट और पेन की सहायता लेनी होगी। साथ ही रंगों के चयन एवं उपयोग की बहुत संभवनाएँ बढ़ी हैं। जिनका उपयोग चित्रकार अपनी सुविधा अनुसार करता है और बेहतर परिणाम पाता है।

डिजिटल टेबलेट

डिजिटल टेबलेट के आ जाने से कला की दुनिया विशेषकर रेखाचित्रकारों की दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन आए हैं। डिजिटल टेबलेट की सहायता से रेखाचित्रों का निर्माण करना बहुत ही आसान हो जाता है। इस पर कार्य करना पेंसिल से कागज़ पर रेखाचित्र बनाने के समान है।

पेन टेबलेट से चित्रों को सुधारना व बार-बार परिवर्तन करना भी आसान होता है जबकि परंपरागत तकनीक के द्वारा यह कार्य बहुत ही मुश्किल से होता है।

स्कैनर

स्कैनर एक ऐसा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है जिसकी सहायता से हम किसी भी चित्र या फोटो, चाहे वह श्याम-श्वेत हो या रंगीन, को आसानी से स्कैन कर लेते हैं जिसे बाद में डिजिटल रूप में कंप्यूटर पर सुरक्षित (Save) कर लिया जाता है। इन इमेजों में आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करके उपयोग किया जाता है।

रेखाचित्र बनाने के स्रोत

रेखाचित्रण के कई स्रोत हो सकते हैं जिसमें प्रकृति और वास्तविकता में संसार में जो हम देखते हैं। दूसरे, इमेजिनेशन और हमारे दिमाग में जो घटता है उदाहरण के लिए, हमने कोई दुर्घटना देखी जब हम घर आते हैं तो वह घटना बार-बार हमारे दिमाग में आती रहती है, जिसे हम रेखाचित्रों के द्वारा दर्शाते हैं। दूसरे, हम कोई

पात्र, कोई वस्तु अपनी इमेजिनेशन से सृजित करते हैं। उदाहरणार्थ, एक दैत्य, एक राक्षस आदि। रेखाचित्रों के स्रोत के रूप में निम्नलिखित बिंदु मुख्य हैं:

- हमारे जीवन में प्रतिदिन कुछ-न-कुछ घटता रहता है चाहे वह अच्छा हो या बुरा, जिससे प्रेरित होकर हम रेखाचित्र बनाते हैं।
- धार्मिक साहित्यों और ग्रंथों से प्रेरित होकर रेखाचित्र बनाते हैं।
- कहानी और कविता पर रेखाचित्र बनाते हैं।
- विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को आधार बनाकर रेखाचित्र बनाते हैं।

शैली का विकास

चित्रकार थोड़ा बहुत अपने चित्रों में अपनी जीवन-शैली, अपने वातावरण का प्रभाव छोड़ता है। ज़्यादातर चित्रकार अपनी एक पहचान (शैली) बना लेते हैं जो उनके चित्रों से पता लगती है। वही उनकी पहचान बनती है कि अमुक चित्र अमुक चित्रकार द्वारा बनाया गया है। उदाहरण के तौर पर आर. के. लक्ष्मन, मारियों मिराण्डा, मिकी पटेल, पुलक विश्वास और सुधीर तैलंग जैसे रेखाचित्रकारों ने अपनी शैली विकसित की है, वही उनकी पहचान भी है।

प्रतियोगिता का युग

नए-नए रूपों एवं माँग के अनुसार रेखाचित्रों का सृजन करना अपने आप में एक चुनौती भरा कार्य है। प्रतियोगिता के इस युग में अपनी पहचान बनाना आपकी कार्यशैली एवं सृजनशक्ति पर बहुत हद तक निर्भर करता है। साथ ही आपके आस-पास क्या कुछ घट रहा है आदि बातों पर भी ध्यान देना चाहिए, ताकि नए-नए विषयों पर रेखाचित्रों का सृजन करने के लिए सामग्री उपलब्ध हो सके।

रेखाचित्रण में प्रतिस्पर्धा

रेखाचित्रकारों की आवश्यकता निकट भविष्य में बहुत ही बढ़ने वाली है, और जो रेखाचित्रकार डिजिटल तकनीक का उपयोग करके रेखाचित्रों का निर्माण करने में सक्षम होंगे, वही आने वाले समय में अपनी उपस्थिति का आभास कराने में सफल होंगे।

डिजिटल रेखाचित्र की सबसे ख़ास बात यह है कि इन्हें आसानी से एक जगह से दूसरी जगह सिर्फ एक पेन ड्राइव या सी.डी. की सहायता से लाया ले जाया जा सकता है साथ ही ई-मेल व एस.एम.एस. की सहायता से विश्व के किसी भी कोने में भेजा जा सकता है। डिजिटल तकनीक से बने रेखाचित्रों के नतीजे अति उत्तम होते हैं। इन सभी रेखाचित्रों का निर्माण छपाई सामग्री वाणिज्य उत्पाद और डिजिटल माध्यम के लिए होता है।

रेखाचित्रकार साधारणतया तकनीकी ज्ञान व अनुभव विश्वविद्यालय में प्राप्त करता है, जहाँ उसे विश्व में उपयोग की गई नयी-नयी तकनीकों व ज्ञान से अवगत कराया जाता है। साथ ही रेखाचित्र बनाने में नए-नए उपायों का उपयोग करना सिखाया जाता है।

रेखाचित्रण में व्यवसाय

रेखाचित्रकार रेखाचित्रों का सृजन करता है

जो विचारों, संकल्पनाओं और कहानियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह रेखाचित्र प्राय: पत्रिकाओं, किताबों और अन्य प्रकाशनों मे छापी जाती हैं। रेखाचित्रकार वाणिज्य उत्पादों जैसे ग्रीटिंग कार्ड, कैलेंडर पैकेजिंग या डिजिटल रेखाचित्रों आदि में उपयोगी होते हैं।

रेखाचित्रकार के सामने नौकरी पाने के कई अवसर होते हैं, जैसे– विज्ञापन एजेंसियों, मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनीज़, फैशन उद्योग, मेडिकल व सरकारी संस्थाओं में, जो रेखाचित्रकार डिजिटल रेखाचित्र बनाते हैं उनके लिए आज के युग में अधिक अवसर हैं साथ ही रेखाचित्रकार स्वतंत्र रहकर भी कंपनियों से काम लाकर कर सकते हैं। रेखाचित्रकार का कार्य रेखाचित्र विजुअलाइज़ करना, कार्य उत्पन्न करना व रेखाचित्रों का सृजन ग्राहक के अनुरूप करना होता है जो पूर्णत: माध्यम व तकनीक का इस्तेमाल करके रेखाचित्रों का निर्माण करते हैं, जैसे–

- *विज्ञापन या वाणिज्य चित्रण*–उत्पाद को बेचने व बढ़ावा देने में उपयोग किया जाता है।
- *संपादकीय चित्रण*– प्रकाशन में संपादकीय लेख को बढ़ावा या समर्थन देने में उपयोग किया जाता है।
- *चिकित्सा चित्रण*–शारीरिक रचना एवं सूक्ष्म जीवों के चित्रण हेतु।
- *फैशन चित्रण*–अतिश्योक्तिपूर्ण अनुपात में रेखाचित्रण करने हेतु।
- *चेहरा चित्रण*–व्यक्ति के यथार्थवादी चित्रण हेतु।
- *कैरीकेचर चित्रण*–अतिश्योक्तिपूर्ण भावों द्वारा हास्यास्पद चित्रण करना।
- *बाल साहित्य चित्रण*–एक शैली में चित्रण करना।

संस्थान

रेखाचित्रण वस्तुओं एवं विचारों को व्यक्त करने का सरल एवं सुगम माध्यम है जिसकी उपयोगिता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। फाइन आर्ट एवं कमर्शियल आर्ट में डिग्री एवं डिप्लोमा हासिल करने के लिए देश में कई विश्वविद्यालय और संस्थाएँ हैं जो सर्टिफिकेट कोर्स भी कराती हैं, जिसका लाभ उठाया जा सकता है। इस क्षेत्र में अपना करियर बनाया जा सकता है। इन संस्थाओं से प्रशिक्षण लेने के बाद विद्यार्थी एक अच्छा रेखाचित्रकार, अच्छा कार्टूनिस्ट, अच्छा एनिमेटर बन सकता है। नीचे कुछ कला विश्वविद्यालयों के नामों की सूची दी गई है जो फाइन आर्ट में डिप्लोमा व डिग्री कोर्स करवाते हैं। इन विश्वविद्यालयों से विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं–

- एन.एस.डी., बड़ौदा
- ललित कला महाविद्यालय, दिल्ली
- जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी, दिल्ली
- जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई
- कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट, लखनऊ व चेन्नई
- कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट, मानस गंगोत्री , मैसूर
- ए. पी. जे. कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट (गुरूनानक देव यूनिवर्सिटी), जालंधर

- शान्ति निकेतन कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट, कोलकाता
- कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट, शिमला.

निष्कर्ष

इसमें दो राय नहीं कि रेखाचित्र प्रत्येक विषय को समझने में हमारी मदद करते हैं। इनके द्वारा जटिल से जटिल विषय भी आसानी से समझा जा सकता है। शायद यही कारण है कि रेखाचित्रों की माँग दिन-प्रतिदिन रोजगार के अनुपात में बढ़ती जा रही है। इस माँग को पूरा करने के लिए नए-नए रेखाचित्रकार इस क्षेत्र में अपनी किस्मत आज़मा रहे हैं। प्रतिस्पर्धा के इस युग में सफलता उसे ही मिलेगी जो नयी तकनीक व सोच के साथ डिजिटल सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल करके उत्तम-से-उत्तम परिणाम देने में सक्षम होगा। रेखाचित्रण के नए-नए क्षेत्र व नौकरी पाने के अवसरों को देखते हुए यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि इस क्षेत्र में भविष्य व पैसा दोनों उपलब्ध किए जा सकते हैं।

संदर्भ

प्रसाद, देवी, 2005, *शिक्षा का वाहन कला*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

स्वामी, ई. कुमारिल, 1996, *भारतीय कला और कलाकार*, प्रकाशन विभाग, *सूचना और प्रसारण मंत्रालय*

प्रसाद, देवी, 1999, *शिक्षा का वाहन कला*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

पाण्डेय, संध्या, पाण्डेय, आर. पी., 2007, *भारतीय कला का पुनर्जागरण एवम् चित्रकला*, मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी

केलर, 1961, द *आर्ट इन टीचिंग आर्ट*, यूनिवर्सिटी एट नब्रास्का प्रेस, लिनकॉन

व्हाइट, टोनी, 1986, द *एनिमेटरस वर्कबुक*, वाटसन गुप्टिल पब्लिकेशन, न्यूयार्क

भारतवर्ष में साक्षरता के विभिन्न पहलू

मृदुला भदौरिया*

रश्मि गोरे**

साक्षरता किसी भी राष्ट्र की प्रगति एवं उन्नति की अनिवार्य शर्त है। संविधान के 86वें संशोधन में 6-14 वर्ष के बालकों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्तव्य बना दिया गया तथा अप्रैल 2009 में शिक्षा का अधिकार कानून बना दिया गया। किंतु आज भी संपूर्ण विश्व की 35% निरक्षर जनसंख्या भारतीय है। विश्व साक्षरता औसत 84% की तुलना में भारत की साक्षरता दर मात्र 66% है। भारत के विभिन्न राज्यों में साक्षरता दर में भी भिन्नता है, जहाँ केरल, मिज़ोरम, गोवा तथा हिमाचल प्रदेश में साक्षरता दर उच्च है, वहीं उत्तर प्रदेश, झारखण्ड एवं बिहार की दशा सोचनीय है। साक्षरता दर में यह भिन्नता मात्र राज्य स्तर पर ही नहीं है, अपितु विभिन्न समूहों में भी विद्यमान है। महिला, ग्रामीण, अनुसूचित जाति एवं जनजाति तथा निम्न आय वर्ग समूहों में साक्षरता दर अपेक्षाकृत निम्न है। महिला साक्षरता दर प्रत्येक समूह में निम्न है जिसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त महिला-पुरुष भेदभाव है। संतोष का विषय है कि विभिन्न सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन से साक्षरता दर में लैंगिक अंतर में कमी देखने में आई है।

साक्षरता एवं शिक्षा किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति की धुरी होते हैं। भारतीय संविधान में 6-14 वर्ष तक के बालकों के लिए सार्वभौम एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करते हुए इसको राष्ट्रीय उद्देश्य के रूप में वरीयता दी गई है। इसको और अधिक प्रभावी बनाने के लिए संसद ने 2002 में संविधान में 86वाँ संशोधन पास किया जिसके द्वारा इस आयु वर्ग के बालकों की शिक्षा को उनका मौलिक अधिकार बना दिया गया है। शिक्षा हेतु अधिक धन उपलब्ध कराने के लिए 2% 'शिक्षा कर' भी लगाया गया है। स्वतंत्रता के समय भारत की

* *संकायाध्यक्ष*, शिक्षा संकाय, सी.एस.जे.एम. वि.वि., कानपुर, उ.प्र.

** *व्याख्याता*, शिक्षा विभाग, सी.एस.जे.एम. वि.वि., कानपुर, उ.प्र.

साक्षरता दर 12% थी जो वर्ष 2007 में बढ़कर 66% हो गई है। इस प्रकार 60 वर्षों में साक्षरता दर में पाँच गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है।

किंतु यह भी सत्य है कि आज भी पूरे विश्व की लगभग 35% निरक्षर जनसंख्या भारतीय है और जिस प्रकार विश्व में साक्षरता वृद्धि की प्रक्रिया देखने को मिल रही है उससे यह स्पष्ट हो रहा है कि 2020 तक विश्व में सबसे अधिक निरक्षरता अनुपात भारत का ही होगा। अनेक सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बाद भी भारत की साक्षरता दर में बहुत धीमी गति से वृद्धि हो रही है तथा ऐसा अनुमान है कि 'सार्वभौम साक्षरता' की प्राप्ति 2060 से पहले होना संभव नहीं होगा। अपने देश में साक्षरता के संबंध में एक दु:खद पहलू यह भी है कि पुरुष एवं महिला साक्षरता दर में भी बड़ा अंतर है। सन् 2009 में प्रौढ़ साक्षरता दर पुरुषों में 76.9% जबकि महिलाओं में 54.5% मात्र थी।

साक्षरता वृद्धि हेतु सरकार ने 1988 में 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' कार्यक्रम प्रारंभ किया जिसका लक्ष्य वर्ष 2007 तक साक्षरता दर को 75% तक लाना था। इस योजना का उद्देश्य 15-35 आयु वर्ग के निरक्षरों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना था। वर्ष 2001 में 'सर्व शिक्षा अभियान' योजना प्रारंभ की गई जिसका उद्देश्य यह था कि 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चे विद्यालय जाएँ तथा वर्ष 2010 तक आठ वर्ष की विद्यालयीय शिक्षा पूरी करें। इस अभियान के महत्वपूर्ण अंग के रूप में 'शिक्षा गारंटी योजना' तथा 'वैकल्पिक एवं नवाचारी शिक्षा' योजना को उन स्थानों के लिए अपनाया गया जहाँ तक एक किलोमीटर के दायरे में बच्चों के लिए औपचारिक विद्यालय नहीं है। इससे पूर्व वर्ष 1994 में प्रारंभ की गई डी.पी.ई.पी. योजना के अंतर्गत वर्ष 2005 तक लगभग 1,60,000 नए विद्यालय खोले गए। विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बाद भी प्राथमिक शिक्षा स्तर पर विद्यार्थियों का बीच में स्कूल छोड़ देना (Drop-out) एक बहुत बड़ी चिंता का विषय रहा है। अत: विद्यार्थियों को विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने हेतु आकर्षित करने के लिए 1995 में बहुचर्चित 'मिड-डे मील योजना' प्रारंभ की गई।

विश्व परिदृश्य में भारत

विश्व का साक्षरता औसत 84% है जिससे भारतवर्ष अभी काफ़ी पीछे है। नीचे दी गई तालिका प्रौढ़ साक्षरता दर के आधार पर तुलनात्मक स्थिति प्रदर्शित कर रही है -

देश	प्रौढ़ साक्षरता दर (18 वर्ष +) 2007
चीन	93.3
श्रीलंका	90.8
बर्मा	89.9
ईरान	82.4
भारत	66.0
नेपाल	56.5
पाकिस्तान	54.2
बांग्लादेश	53.5

स्रोत – एन.एफ.एच.एस.-3, 2005-06

इस प्रकार भारतवर्ष की साक्षरता दर विश्व औसत से काफ़ी नीचे है जबकि हमारे पड़ोसी देश श्रीलंका एवं चीन की साक्षरता दर विश्व औसत से काफ़ी उच्च है।

साक्षरता - आंतरिक स्थिति

भारतवर्ष में राज्यवार भी साक्षरता की स्थिति में भिन्नता है। नीचे दी गई तालिका में जनगणना, 2001 तथा एन.एफ.एच.एस.-3 (2007) सर्वेक्षण के आधार पर राज्यवार साक्षरता की स्थिति प्रस्तुत है।

राज्यवार साक्षरता की स्थिति

क्र.सं.	राज्य	साक्षरता दर (%) एन.एफ.एच.एस.-03 (2007)	साक्षरता दर (%) जनगणना, 2001
1.	केरल	100%	90.86%
2.	मिज़ोरम	89.9%	88.80%
3.	गोवा	83.3%	82.01%
4.	हिमाचल प्रदेश	81.3%	76.48%
5.	त्रिपुरा	80.2%	73.19%
6.	महाराष्ट्र	77.6%	76.88%
7.	सिक्किम	76.6%	68.81%
8.	मध्य प्रदेश	76.5%	70.53%
9.	असम	76.3%	63.25%
10.	उत्तराखण्ड	75.7%	71.62%
11.	तमिलनाडु	74.2%	73.45%
12.	पंजाब	74%	69.65%
13.	आंध्र प्रदेश	72.5%	69.47%
14.	गुजरात	72.1%	69.14%
15.	मेंघालय	72.1%	62.56%
16	पश्चिम बंगाल	71.6%	68.64%
17.	हरियाणा	71.4%	67.91%
18.	कर्नाटक	69.3%	66.64%
19.	ओडिशा	68.8%	63.08%
20.	राजस्थान	68%	60.71%

	भारत	**67.6%**	**64.84%**
21.	जम्मू कश्मीर	66.7%	55.52%
22.	नागालैण्ड	63.7%	60.47%
23.	छत्तीसगढ़	63.6%	64.66%
24.	अरुणाचल	62.8%	54.34%
25.	उत्तर प्रदेश	61.6%	52.67%
26.	मणिपुर	60.9%	63.74%
27.	झारखंड	58.6%	53.56%
28.	बिहार	54.1%	47.08%

स्रोत - एन.एफ.एच.एस. 2005-06, जनगणना भारत सरकार, 2001

राज्यवार स्थिति का विश्लेषण प्रकट कर रहा है कि प्रत्येक राज्य में 2001 से 2007 के मध्य साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हुई है। किंतु केरल, हिमाचल प्रदेश, त्रिपुरा, सिक्किम, असम, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मेघालय एवं राजस्थान की प्रगति उल्लेखनीय है। लेकिन यह चिंता का विषय है कि चार हिंदी भाषी राज्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार एवं राजस्थान पूरे भारतवर्ष के 42.76% निरक्षरता हेतु उत्तरदायी हैं।

केरल भारतवर्ष का सर्वाधिक साक्षर राज्य (90.86%) है और यहाँ का 'कोट्टायम' प्रथम वह जिला है जहाँ साक्षरता दर 100% पहुँच गई है। 1990 में एर्नाकुलम जिले में अपने कार्यक्रम 'संपूर्ण साक्षरता अभियान' की सफलता के बाद केरल सरकार ने राज्य स्तर पर यह अभियान प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत 'साक्षरता पद-यात्राएँ' तथा 'कला जत्था' का आयोजन साक्षरता हेतु सकारात्मक वातावरण बनाने के लिए किया गया। इस संपूर्ण कार्यक्रम में सरकार ने गैर-सरकारी संस्थाओं का भी सहयोग प्राप्त किया।

मिज़ोरम में 1951 में साक्षरता दर 31.14% थी जो 2001 में 88.80% पहुँच गई है। मिज़ोरम का सामाजिक ताना-बाना इस प्रकार का है जहाँ सामाजिक-आर्थिक भेद कम है। सरकार ने भी संपूर्ण साक्षरता अभियान काफ़ी मजबूती से चलाया है। सर्वप्रथम निरक्षरों की पहचान की गई और 'एनीमेटरर्स' को प्रत्येक पाँच निरक्षरों को साक्षर करने का दायित्व सौंपा गया। सतत् शिक्षा केंद्रों की स्थापना एवं विद्यालय ड्रॉप आउट हेतु विशेष योजनाओं के संचालन द्वारा साक्षरता दर में वृद्धि के विशेष प्रयास किए गए।

राजस्थान में साक्षरता की प्रगति वास्तव में प्रशंसनीय है। 1991-2001 के मध्य साक्षरता दर में सर्वाधिक वृद्धि राजस्थान में ही हुई है। सरकार द्वारा 'शिक्षा कर्मी', 'लोक-जुम्बिश' व 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम' जैसी सशक्त योजनाओं का सफल संचालन किया गया। आज राजस्थान के लगभग प्रत्येक गाँव में प्राथमिक विद्यालय संचालित हो रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस अंतराल में महिला साक्षरता दर (14.38%)

में पुरुष साक्षरता दर (11.13%) से अधिक तेज गति से वृद्धि हुई है।

सशक्त सरकारी कार्यक्रमों एवं समुदाय के सहयोग से हिमाचल प्रदेश 2001 की जनगणना में भारतवर्ष के सर्वाधिक साक्षर प्रदेशों में से एक बन गया है। वर्ष 1960 से सरकार ने विद्यालय खोलने एवं शिक्षक उपलब्ध कराने का कार्य निरंतर जारी रखा है। इस प्रदेश में भी सामाजिक आर्थिक विषमताएँ कम होने से सरकारी योजनाएँ एवं कार्यक्रम आसानी से चलाए जा रहे हैं तथा बच्चों को विद्यालय भेजना समाज में संमान की दृष्टि से देखा जाने लगा है।

जनगणना 2001 के अनुसार तमिलनाडु प्रदेश की साक्षरता दर 73.4% है जबकि 1981 में यह 54.4% ही थी। 1982 में प्रदेश में विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों हेतु मुफ्त मध्याह्न भोजन की योजना प्रारंभ की गई जिसके प्रभाव से विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। बाद में 2001 में उच्चतम न्यायालय ने सभी राज्यों से अपने सरकारी विद्यालयों में इस प्रकार की योजना लागू करने का निर्देश दिया। एक ओर ऐसे राज्य हैं जहाँ साक्षरता में तेज़ी से वृद्धि हुई है किंतु दूसरी ओर ऐसे भी राज्य हैं जहाँ अभी प्रगति संतोषजनक नहीं है।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों में शामिल मध्य प्रदेश ने पिछले दशक (1991-2000) में साक्षरता के स्तर में 19.14% की वृद्धि की, जिसे एक सामाजिक क्रांति कहा जा सकता है। मध्य प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के साथ-साथ 15 वर्ष से अधिक आयु के लोगों को भी साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है क्योंकि ये ही विद्यालय जाने वाले बच्चों के अभिभावक हैं, और इनके साक्षर होने से न केवल विद्यालय में उपस्थिति में सुधार होगा वरन् बच्चों की शिक्षा में भी गुणवत्ता आएगी। साथ ही शिक्षा अधूरी छोड़ने वालों की संख्या में कमी लाने के लिए विशेष प्रयत्न किए जा रहे हैं। शिक्षा के लोकव्यापीकरण की संकल्पना को साकार करने के लिए राजीव गाँधी प्राथमिक शिक्षा मिशन, पढ़ना-पढ़ाना आंदोलन, शिक्षा गारण्टी योजना, स्कूल चलो आदि योजनाओं का योगदान उल्लेखनीय है।

अन्तःसमूह साक्षरता की स्थिति

भारतवर्ष में केवल राज्यवार ही साक्षरता की स्थिति में अंतर नहीं है अपितु विभिन्न समूहों—महिला-पुरुष, ग्रामीण-शहरी, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आदि के मध्य भी अंतर है—

अन्तःसमूह साक्षरता

समूह	महिला (%)	पुरुष (%)
शहरी	75	88
ग्रामीण	46	72
अनुसूचित जाति	44	72
अनुसूचित जनजाति	33	60
अन्य पिछड़ा वर्ग	52	79
निम्न आय वर्ग	19	72
मध्यम आय वर्ग	50	79
उच्च आय वर्ग	55	90

स्रोत - एन.एफ.एच.एस.-3, भारत 2005-06

इस प्रकार विभिन्न समूहों के बीच साक्षरता दर में भी अंतर गंभीर चिंता का विषय है। पिछले 30 वर्षों में महिलाओं की साक्षरता दर में लगभग दोगुनी वृद्धि हुई है, किंतु आज भी लगभग एक-चौथाई युवा महिला तथा एक-दहाई पुरुष निरक्षर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष-महिला साक्षरता अनुपात में अधिक अंतर है। जहाँ शहरी क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता दर 88% तथा महिलाओं की साक्षरता दर 75% है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष साक्षरता दर 75% के मुकाबले महिला साक्षरता दर मात्र 46% है।

निरक्षरता के लिए कई सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक कारण उत्तरदायी हैं। सुदूर बस्तियों तक सरकारी नीतियों की पहुँच का अभाव है। भारत में 30% प्राथमिक स्कूल बिना ब्लैकबोर्ड के चल रहे हैं। 80% प्राथमिक विद्यालयों में पर्याप्त कमरे नहीं हैं। 45% प्राथमिक विद्यालय में बैठने की टाट-पट्टी पर्याप्त नहीं है। एक तिहाई विद्यालय मात्र एक शिक्षक के सहारे चल रहे हैं। शिक्षकों को समय-समय पर अतिरिक्त कार्यों जैसे– पशुगणना, जनगणना आदि में लगा दिया जाता है। ग्रामीण साक्षरता के संदर्भ में सामाजिक कारक अधिक उत्तरदायी हैं, विशेषकर महिलाओं के संदर्भ में। पुरुष प्रधान मानसिकता, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, रूढ़िवादिता आदि निरक्षरता को बढ़ावा देते हैं। प्राथमिक विद्यालयों की दूरी एवं उनमें शौचालयों की अनुपयुक्त व्यवस्था बालिका शिक्षा के मार्ग में कंटक का कार्य करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षणिक आधारभूत सुविधाओं जैसे– स्कूल भवन, छात्रावास, यातायात सुविधा आदि का अभाव होने के साथ-साथ महिला छात्रावास, महिला अध्यापकों की कमी तथा शिक्षा संबंधी सूचनाओं का प्रसार न हो पाना आदि भी महिला शिक्षा की स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

साक्षरता दर में जातिगत विषमता की स्थिति अधिक चिंताजनक है। अनुसूचित जनजाति में महिला साक्षरता दर मात्र 33% है। जनजातीय निम्न साक्षरता दर का प्रमुख कारण उनकी निम्न आर्थिक स्थिति है। जनजातीय परिवार अपने किशोर बच्चों को स्कूल भेजना श्रम विभाजन के परंपरागत स्वरूप में व्यवधान मानते हैं। दुर्गम स्थलों पर निवास, भिन्न सांस्कृतिक एवं जीवन मूल्य तथा भाषा, जनजातीय साक्षरता के मार्ग में प्रमुख समस्याएँ हैं। अधिकतर जनजातीय भाषाओं और बोलियों के अपने विकास के प्रारंभिक चरण में होने से उनका लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। सामाजिक-आर्थिक स्तर पर साक्षरता दर में प्रबल विषमता दृष्टिगोचर हुई है। निम्न आर्थिक परिवारों में महिला साक्षरता दर पुरुष (72%) के मुकाबले मात्र 19% है, जो बहुत ही विचारणीय स्थिति है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के बच्चों को कूड़ा बीनकर या स्वयं श्रम करके अपना पेट पालना पड़ता है। आजीविका पालन उनका प्रथम उद्देश्य होता है, तथा शिक्षा या स्कूल को वे गैर-ज़रूरी समझते हैं।

इस प्रकार महिला साक्षरता दर प्रत्येक समूह में पुरुषों से कम है। इसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त महिला-पुरुष भेदभाव ही है। साथ

ही बालिकाओं को विद्यालय में प्रवेश दिलाने में भी अभिभावकों में भेद-भाव देखा जाता है। यदि वे विद्यालय में प्रवेश ले भी लेती हैं तो जल्दी ही विद्यालय छोड़ भी देती हैं। आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवारों में महिला साक्षरता हाशिए पर है। (लगभग 19%) घरेलू कार्यों में संलग्नता, छोटे भाई-बहनों की देखभाल, परिवार की निधर्नता, दूर से पानी लाना, इत्यादि बीच में पढ़ाई छोड़ देने के प्रमुख कारण हैं। शहरी क्षेत्रों में निर्धन परिवारों में माँ का काम पर जाना, तथा कहीं-कहीं माँ के साथ काम पर जाना भी बालिकाओं की साक्षरता में बाधक के रूप में सामने आया है।

इसके साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक विसंगतियाँ तथा कुरीतियाँ भी लड़कियों की साक्षरता में बाधक बनती हैं। जानवरों के लिए चारा लाना, उपले बनाना, खाना बनाना, परिवार की आय के लिए योगदान देना, पर्दा प्रथा, घरेलू काम-काज में अत्यधिक व्यस्तता आदि अनेक बंदिशें महिलाओं को औपचारिक शिक्षण संस्थानों में पढ़ने से वंचित करती हैं।

साक्षर भारत के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों एवं मलिन बस्तियों, नगरीय क्षेत्र तथा जनजातीय क्षेत्रों) को शत्-प्रतिशत विद्यालय में लाना तथा उनके द्वारा कक्षा 8 तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना सुनिश्चित किया जाए। विद्यालय में शत्-प्रतिशत नामांकन तथा ठहराव की स्थितियाँ दयनीय हैं। उच्च आयु वर्ग में विद्यालय उपस्थिति दर की स्थिति विशेष रूप से सोचनीय है, मुख्य रूप से बालिका शिक्षा के संदर्भ में। 15 से 17 आयु वर्ग में विद्यालय नामांकन दर में लैंगिक विषमता न सिर्फ विद्यमान है, बल्कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ इस अंतर में भी वृद्धि हुई है। भारत में राजस्थान, बिहार एवं झारखंड ऐसे राज्य हैं, जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय उपस्थिति दर में लैंगिक विषमता सर्वाधिक है। आंध्र प्रदेश, उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, ओडिशा, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश में भी स्कूल उपस्थिति दर में उच्च लैंगिक भिन्नता है। लेकिन हर्ष का विषय है कि भारत के कुछ राज्यों, जैसे– केरल, दिल्ली, सिक्किम, नागालैण्ड तथा मेघालय में बालकों की तुलना में बालिकाओं की विद्यालय उपस्थिति दर अधिक है।

भिन्न आयु वर्ग में विद्यालय नामांकन दर

आवास	शहरी			ग्रामीण		
आयु वर्ग (लिंग)	6 से 10 वर्ष (%)	11 से 14 वर्ष (%)	15 से 17 वर्ष (%)	6 से 10 वर्ष (%)	11 से 14 वर्ष (%)	15 से 17 वर्ष (%)
बालक	88	83	52	84	79	47
बालिका	88	81	51	79	66	28

स्रोत : एन.एच.एफ.एस. भारत, 2005-06

शहरी क्षेत्रों में विद्यालय नामांकन के संदर्भ में लैंगिक भिन्नता नगण्य है किंतु ग्रामीण भारत

में बालिकाओं की विद्यालय में उपस्थिति मात्र 17% है। बच्चों के विद्यालय से पलायन के कई कारण हैं, जिसमें अभिभावकों की नकारात्मक सोच, ग्रामीण क्षेत्र में पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरक्षर होने के कारण बच्चों की शिक्षा के प्रति अभिरुचि न होना, विद्यालयों में अध्यापक का नियमित न आना, स्वास्थ्य तथा गरीबी आदि प्रमुख हैं। से पिछड़े, अनुसूचित जाति, जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग की बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। पूरा (PURA–Providing Urban Amenities in Rural Area-2003) द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बेहतर शैक्षणिक तथा प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा शिक्षा प्रदान करायी जा रही है।

विभिन्न आयु वर्ग में साक्षरता की स्थिति

लिंग/आयु वर्ग	15-49	15-19	20-24	25-29	30-34	35-39	40-44	45-49
महिला	55	74	64	55	48	43	40	38
पुरुष	78	89	84	81	76	70	69	68

स्रोत - एन.एफ.एच.एस.-3, 2005-06

विभिन्न आयु वर्ग में साक्षरता दर में उच्च लैंगिक अंतर बने हुए हैं। लेकिन प्रसन्नता का विषय है कि निम्न आयु में यह विषमता काफ़ी कम हुई है। 45-49 आयु में साक्षरता दर में लैंगिक अंतर 30% है, जबकि 15-19 आयु वर्ग में यह अंतर मात्र 5% है। इसका प्रमुख कारण केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा चलायी जाने वाली प्रमुख योजनाओं जैसे– ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड, मध्याह्न भोजन, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, जनशाला, महिला सामाख्या, लोक-जुम्बिश, सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय बालिका शिक्षा कार्यक्रम, शिक्षा विधेयक आदि का क्रियान्वयन प्रमुख रूप से रहा है। बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना (2005), विशेष आवासी विद्यालय योजना (2005) तथा कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय (2003) योजनाओं द्वारा आर्थिक दृष्टि

जनजातियों के सांस्कृतिक परिदृश्य, उनकी प्रतिभा और विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें उपयुक्त शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास उल्लेखनीय है। इस कड़ी में आश्रम विद्यालय, मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति, पुस्तक बैंक योजना, राजीव गाँधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति योजना (2005-06), पुअरेस्ट एरिया सिविल सोसायटी आदि कार्यक्रमों द्वारा जनजातीय साक्षरता हेतु प्रयत्न किए जा रहे हैं।

संतोष का विषय है कि सरकार साक्षरता वृद्धि हेतु गंभीर प्रयास कर रही है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा कराए गए अध्ययन के अनुसार 1996-2006 के मध्य महिलाओं के स्वास्थ्य साक्षरता एवं रहन-सहन के स्तर में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। जी.डी.आई. (जेंडर डेवलपमेंट इंडेक्स) तथा जी.इ.आई. (जेंडर

इम्प्लॉयमेंट इंडेक्स) दोनों में ही उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। हमें साक्षरता को एक क्रांति के रूप में देखना होगा तथा पोलियो उन्मूलन की तरह निरक्षरता को भी संक्रामक रोग समझकर उसके उपचार हेतु कई चक्रों में नामांकन, ठहराव तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की योजना को साकार करना होगा।

सरकार द्वारा संचालित कल्याणकारी एवं शैक्षिक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के प्रभावकारी परिणामों के फलस्वरूप आशा है कि नयी जनगणना साक्षरता वृद्धि के सकारात्मक संकेत लेकर आएगी।

संदर्भ

गुप्ता, पी.डी., 1987, *वर्क एक्सपीरियंस क्लासेज I एण्ड II* , एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली।

एलीमेन्ट्री एजुकेशन, 2006, *स्टिल ए लाँग वे टू गो - अ रिपोर्ट बाय प्रथम*, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, एलीमेन्ट्री।

एजुकेशन: ई.जी.एस. एण्ड ए.आई.ई. www.education.nic– *अ हैन्ड बुक ऑन डी.ई.पी.*-एस.एस.ए., 2005 इग्नू - एमएचआरडी गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया प्रोजेक्ट, इग्नू, नयी दिल्ली।

गोविन्दा, आर. एण्ड वर्गीज, एन.ई., 1993, *क्वालिटी ऑफ प्राइमरी स्कूलिंग : एन इम्पेरिकल स्टडी, जर्नल ऑफ एजुकेशन, प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन*, वॉल्यूम 6।

मेहता, अरुण सी., 2002, *एजुकेशन फॉर ऑल इन इण्डिया मिथ एण्ड रियलिटी*, कनिष्क पब्लिशर्स, नयी दिल्ली।

गोविन्दा, आर., बिस्वाल, के एवं रानी, गीता, 2006, *प्रोग्रेस ऑफ एलीमेंट्री एजुकेशन एक्रॉस इण्डियन स्टेट्स*, डेलिनेटिंग ड्राइवर्स ऑफ चेंज एण्ड प्रोग्रेस, नयी दिल्ली।

मेहरोत्रा, संतोष, 2006, 'रिफॉर्मिंग एलीमेंट्री एजुकेशन इन इण्डिया : ए मेन्यु ऑफ ऑप्शन', *इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल डेवलपमेन्ट*, 26 : 261-277।

भारत सरकार भारतीय योजना आयोग, 2005, मिड टर्म अप्रेजल ऑफ 10th फाइव ईयर प्लान (2002-2007), नयी दिल्ली।

दयाल, मनोज, 2008, 'इम्पोरटेन्स एण्ड यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ एजुकेशन: द रोल ऑफ मीडिया', *यूनिवर्सिटी न्यूज* 46 : 28

जैन, अंजलि, 2005, *प्राथमिक शिक्षा*, के. एस. के. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली।

सर्व शिक्षा अभियान, 2000, *प्रोग्राम फॉर यूनिवर्सल एलीमेंट्री एजुकेशन इन इण्डिया*, डिपार्टमेन्ट ऑफ एलीमेंट्री एजुकेशन एण्ड लिटरेसी, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

http;/www.nfhs.org

व्यर्थ शोध, निरर्थक सिद्धांत और जोखिम में शिक्षा*

पॉल स्मेयर्स

यह लेख अमेरिकी शिक्षा जगत में हो रहे शैक्षिक शोधों के बारे में है और हमारे यहाँ के संदर्भ में समीचीन है। शोध के फलते-फूलते व्यवसाय पर व्यंग्य करते हुए लेख में कहा गया है कि इन शोधों में कुछ पूर्व धारणाएँ काम करती हैं और ये पूर्व धारणाएँ ही अविचारित और दोषपूर्ण हैं। लेख में, जैसा कि शीर्षक से भी ध्वनित होता है कि अधिकांश शोधों से यह अपेक्षा रहती है कि वे भविष्यवाणी करें लेकिन किसी भी शोध से प्राप्त नतीजे किसी अन्य समस्या में नुस्खे के तौर पर काम में नहीं लिए जा सकते। ऐसे शोध तितली पकड़ने या ताश खेलने के समान हैं जिनमें व्यस्तता तो रहती है लेकिन हासिल कुछ नहीं होता।

अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन की वार्षिक सभा में प्रस्तुत हज़ारों आलेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि शैक्षणिक अनुसंधान एक फलता-फूलता व्यवसाय है। निश्चित रूप से इस क्षेत्र में इतना काम पहले कभी नहीं हुआ, जितना इन दिनों हो रहा है। शैक्षणिक अनुसंधान की प्रकृति (चाहे वह गुणात्मक हो या मात्रात्मक) में विविधता बढ़ रही है और उनमें से अधिकांश व्यापक अर्थ में आनुभविक हैं; क्योंकि हम जानना चाहते हैं कि नियमित शैक्षणिक कार्यकलाप में क्या होता है, कैसे होता है और क्यों होता है? शैक्षणिक प्रक्रिया को अच्छे से अच्छा बनाने और इतने ही अच्छे नतीजे प्राप्त करने में इस तरह के अनुसंधान से बहुत ज़्यादा अपेक्षाएँ रहती हैं। निश्चित तौर पर कोई भी प्रैक्टिशनर यह नहीं मानता कि अनुसंधान या सिद्धांत के आधार पर ऐसे तैयारशुदा नुस्खे उसे मिल सकते हैं जिन्हें वह

* *शिक्षा विमर्श*, जुलाई-अगस्त 2006,(पृ. 24-37), से साभार प्रकाशित

अपने काम के दौरान प्रयोग कर सके। फिर भी आनुभविक शोध को आगे ले जाने वाली एकमात्र गतिविधि के रूप में देखा जाता है। परंपरागत माने जाने वाले शैक्षणिक सिद्धांत या शिक्षा दर्शन से प्राप्त अंतर्दृष्टि को कम महत्त्व दिया जाता है। यह केवल एक धारणा ही नहीं है कि इस प्रकार की विद्वता शैक्षणिक अभ्यास के लिए अधिकांशत: अप्रासंगिक है, बल्कि कई अकादमिक क्षेत्रों में शिक्षा-दर्शन की स्थिति भी वस्तुत: बहुत बेहतर नहीं है। संयोगवश यही स्थिति शिक्षा के इतिहास और समाजशास्त्र की भी है, इस सीमा तक कि लाक्षणिक रूप से रिफलेक्टिव है। किसी के लिए भी ऐसा सोचने के कई कारण हो सकते हैं कि प्रैक्टिशनर या बहुत से अकादमिक इस तरह की नकारात्मक धारणा क्यों रखते हैं, लेकिन मैं सिर्फ़ दो का ज़िक्र करूँगा। पहला, जितने प्रकार के भी विज्ञान हैं और वस्तुत: जितने भी तत्संबंधी प्रयास हैं, उनमें एक बोधगम्य पदानुक्रम है, दूसरा आमतौर पर यह विश्वास नहीं किया जाता कि किसी सिद्धांत में समाज को बदलने की क्षमता होती है।

इस लेख में शैक्षणिक अनुसंधान (आनुभविक) के प्रतिमानों से संबंधित नज़रियों के पीछे सक्रिय कुछ पूर्व धारणाओं पर ध्यान केंद्रित करूँगा। मुझे आशा है कि इन पर प्रकाश डालते हुए मैं यह स्पष्ट कर सकूँगा कि ऐसी पूर्व धारणाओं पर आधारित सिद्धांत किस तरह यह भ्रम पैदा करते हैं कि समस्याएँ एक बार में हमेशा के लिए हल की जा सकती हैं और यह आशा करता हूँ कि मैं यह दिखा सकूँगा कि स्वयं शिक्षा को इससे क्या खतरा है। कहने का मतलब यह कि गलत निष्कर्ष निकालकर इस प्रकार की सिद्धांत रचना उस तथ्य को मिटा देती है जो कि शैक्षणिक प्रक्रिया में दाँव पर लगा होता है और निरर्थक सिद्धांत को जन्म देती है। मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान पर समालोचनात्मक दृष्टि डालने के बाद मैं शैक्षणिक सिद्धांत के विकल्प के रूप में दर्शन पर ध्यान केंद्रित करूँगा। कम-से-कम यह व्यंग्य तो किया ही जा सकता है कि शिक्षा के दर्शन के रूप में इन दिनों जो कुछ परोसा जा रहा है उसमें से अधिकांश शैक्षणिक सिद्धांत के आनुभविक रूप से बेहतर नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि सुकरात ने मूल रूप में जो सिखाया, उसकी अपेक्षा की गई। अलेक्जेंडर नेहामास ने हाल ही में 'जीने की कला और व्यंग्य का महत्त्व' पर चिंतन-मनन के बाद अपने विचार रखते हुए इस उपेक्षित विषय की तरफ ध्यान आकृष्ट किया है। हालाँकि नेहामास के निष्कर्षों के साथ कुछ समस्याएँ हैं, पर सुकरात के विषयों की उनकी बोधगम्य पुनर्स्थापना – ख़ासतौर से उनका यह जानने का प्रयास कि जीने का सही मार्ग अपनाना हो तो जीवन की निर्मिति में क्या-क्या चीज़ें शामिल होती हैं– सही शिक्षा में निर्णायक कदम प्रतीत होता है। इस दिशा में कदम रखने के लिए मेरी राय है कि हमें शैक्षणिक अनुसंधान और सिद्धांत की आवश्यकता है, जो शैक्षिक अभ्यास (प्रैक्टिस) को गंभीरता से ले– अर्थात् हमें ऐसे नज़रिए की ज़रूरत है जो कि तात्विक और सैद्धांतिक वर्चस्व

के प्रति हमारे लगाव से हटकर और सुकरात के अर्थ में सच्चे मायनों में 'राजनीतिक' हो। ऐसा नज़रिया प्रत्यक्षवाद और नकारवाद को लांघ जाता है। पहले मैं पूरी तस्वीर रखूंगा और उन विभिन्न सैद्धांतिक पूर्वासीन धारणाओं के कुछ आम लक्षणों को रेखांकित करूंगा, जो शिक्षा में अकादमिक हितों को प्रभावित करते हैं।

शिक्षा में सैद्धांतिक रुचि

शिक्षा दर्शन में हाल ही में कट्टरतावाद की तीखी आलोचना लगातार होती रही है। इसी बीच पिछले दो दशक में शिक्षा के कुछ दार्शनिकों के कार्यों से समस्याएँ उजागर हुई हैं जो सामान्य-साध्य प्रारूप (कांट के अनुरूप) से प्रभावित सोच में अंतर्निहित थीं। उसके अतिरिक्त, उत्तर आधुनिक शैक्षणिक सिद्धांत उन सरोकारों को उठाता है जो साइतागाइस्त (किसी काल-खण्ड की संपन्न विचार संपदा का सार-तत्व) न भी सही, वर्तमान पश्चिम के ख़ास पहलू से जुड़े हैं– अर्थात् परिणामों को मापने और पदानुक्रम में रखने के प्रति पूर्वाग्रह। निश्चित तौर पर कार्यकुशलता और प्रभाविता के सनकीपन के कारण सारगर्भित असली प्रश्न लगभग पूर्ण रूप से अलग-थलग पड़ गए हैं। इसमें ऐसे विवादास्पद राजनीतिक प्रश्न भी शामिल हैं कि आखिर हमें क्या हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए? उपलब्धियाँ मतभेदों को धुँधला कर देती हैं और तब हर चीज़ को बाकी सब चीज़ के मानकों के आधार पर नापा जाता है ताकि सबको एक ही तराजू पर रखकर श्रेणीबद्ध किया जा सके और प्रत्येक को समान मानकों पर जवाबदेह ठहराया जा सके। शिक्षा-विज्ञान के ऐतिहासिक और सामाजिक अध्ययनों से पता चलता है कि समाज और व्यवहार संबंधी विज्ञान में मात्रात्मकता के प्रति लगाव केवल इन विषयों (अनुशासनों) के आंतरिक विकास का परिणाम नहीं है बल्कि, समान रूप से, उन बाह्य बदलावों का नतीजा है जो इन अनुशासनों के सामाजिक संदर्भों से संबंधित है। मात्रात्मकता को तरजीह देने के पीछे नव-उदारवादी समाज के उदय के संगी उन मूल्यों का काफ़ी हाथ है जो शिखर पर हैं और पात्रता या खूबियों के मानदंडों को तय करते हैं।

लेकिन शिक्षा-सिद्धांत ही अकेला नहीं है जिसका झुकाव 'उपलब्धिता' की ओर हुआ है। शैक्षणिक अनुसंधान की मुख्यधारा भी 'वास्तविक अनुसंधान' की रूप-तालिका (प्रतिमान) के प्रभाव में एक दिलचस्प विकास से गुज़री है, जैसा कि शोध के तरीकों पर हुई नयी चर्चा के दृष्टांतों से ज़ाहिर होता है, विशेषकर मात्रात्मक और गुणात्मक तरीकों की खूबियों के बारे में। आज जबकि गुणात्मक तरीकों को पहले की अपेक्षा अधिक संमान दिया जाता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि यह बहस समाप्त हो गई है। अकादमिक समुदाय में यह संदेह आम है कि कुछ भी हो समाजविज्ञानी शोध, जिसमें गुणात्मक शोध भी शामिल हैं, पर्याप्त रूप में ज्ञान की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते। इस संदेह की जड़ें निम्न मान्यता में देखी जा सकती हैं जो कि गलत है– हर चीज़ को समझने का अर्थ है किसी भी चीज़ को नहीं समझना। इस

प्रकार के विद्या-व्यसनी कानून जैसी व्याख्या और प्राकृतिक विज्ञान जैसी 'भविष्यवाणी' चाहते हैं। यह इच्छा प्रत्यक्षवादी प्रवृत्तियों के दार्शनिकों जैसी ही है जिनके लिए दर्शन वही होता है जो मान्य तार्किकता पर आधारित हो तथा जिसका अवधारणात्मक विश्लेषण के तरीकों द्वारा खंडन न किया जा सके (आवश्यक एवं यथेष्ट शर्तों सहित) और जो अनुमानों या निष्कर्षों तक पहुँचने के तर्कसम्मत सटीक नियमों को प्रतिपादित कर सके; या फिर जो ऐसा दर्शन चाहते हैं, जो सब कुछ आच्छादित करने वाली तात्विक व्यवस्था उपलब्ध करा सके।

लुडविग बिटगेनस्टाइन एक ऐसे लेखक हुए हैं जिन्होंने प्रत्यक्षवादी शोध प्रवृत्तियों की कड़ी आलोचना की है। इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि कुछ लोगों ने सामाजिक विज्ञान में ख़ास किस्म की शोध की कमियों को उजागर करने के लिए उनके विचारों को काम में लिया है। बिटगेनस्टाइन के अनुसार, मानविकी विज्ञान में अपने कर्म के कारणों को समझने के लिए हमें पहले स्वयं मानवीय व्यवहार को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। दार्शनिक अन्वेषण से जो समझ बनती है, वह उसी प्रकार की होनी चाहिए जैसी (यद्यपि अपेक्षतया अधिक शोधपूर्ण) कि 'व्यवहार' के करने में होती है और उसका वर्णन भी आम बोलचाल की भाषा में ही होना चाहिए। ऐसी समझ को हमेशा व्यवहारकर्ता की समझ से निर्देशित होना होगा। इसको समझने में एक उदाहरण हमारी मदद कर सकता है। एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि देश के एक भाग में हाशिए पर धकेले गए समुदायों में किशोरियों के गर्भधारण की दर दूसरे भाग से ज़्यादा क्यों है और फौरी तौर पर इस नतीजे पर पहुँचता है कि शिशु को पालना-पोसना और उसकी देखभाल करना उनकी मित्र-मंडली में उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ा देता है और उनके जीवन को अर्थ प्रदान करता है। शायद यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य होगा जिसे वे करना चाहेंगे। इस उदाहरण में सांख्यिकी का ख़ास महत्त्व इसलिए है कि इसकी मदद से 'निम्न उपलब्धि वाले युवा' और 'हाशिए पर स्थित समुदाय' की सुसंगत श्रेणियाँ बनेंगी। साथ ही शोधकर्ता भी जब तक यह नहीं समझेगा कि सार्थक जीवन का मतलब क्या है, परिकल्पना का निर्माण नहीं कर पाएगा। इसलिए इस काम के लिए शोधकर्ता की पूर्व समझ एक पूर्व शर्त हो जाती है। इसी बात को एक दूसरा उदाहरण और आगे ले जाता है। एक समय था जब आमतौर पर यह माना जाता था कि महिलाएँ पुरुषों से कम बुद्धिमान होती हैं। इस कारण कम बुद्धिमान लोगों को शिक्षा का उच्चतर स्तर उपलब्ध करवाना समय की बरबादी समझा जाता था। सभी प्रकार के परीक्षणों और मापदंडों जिसमें मस्तिष्क की क्षमता का मापन भी शामिल है, ने इसे तथाकथित रूप से साबित कर दिया था। यह तर्क आनुभविक प्रमाण, अंततः गलत इसलिए साबित हुआ कि (पूर्व की अपेक्षा) मापने के बेहतर तरीकों का प्रयोग किया गया और इसलिए 'आनुमानिक विधि' निर्दोष है, एक महत्वपूर्ण चुनौती से हमारा ध्यान हटा देता

है कि हम यह देखें कि क्यों इस उदाहरण में वास्तविकता को एक ख़ास अर्थ प्रदान किया गया। इस प्रकार की चुनौती हमें यह जानने में मदद कर सकती है कि एक प्रकार के मापदंडों को दूसरे मापदंडों के मुकाबले क्यों तरजीह दी जाती है। (पहले मस्तिष्क संबंधी और अब एक अमौखिक तार्किकता आधारित परीक्षण को)।

इन 'आनुभविक' तरीकों में बुनियादी गलती यह मान्यता है कि वास्तविकता में एक अर्थ अंतर्निहित है, जिसका हम अपने उपकरणों और तकनीकों से पता लगा सकते हैं। सिर्फ़ आवश्यकता इस बात की है कि हम उसे ऐसी भाषा में रखें जैसे कि वह वहाँ हमसे मिलने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। उदाहरण के लिए यह वक्तव्य कि 'सैम्पल में से 42% ने माता या पिता दोनों से अलगाव की असामान्य अवधि को महसूस किया' यह मानकर दिया गया है कि इस प्रकार के अलगाव को बिना किसी समस्या के चिह्नित किया जा सकता है। इस पर प्रश्न खड़ा करने का आशय अधकचरे रचनात्मकतावाद के इस दावे को स्वीकार करना नहीं है कि सभी अर्थ शून्यता में से सृजित किए जा सकते हैं; यहाँ मात्र यह तर्क दिया जा रहा है कि जब हम वास्तविकता के किसी ख़ास हिस्से को संकल्पना का रूप देते हैं तो यह आवश्यक तौर पर विषयवस्तु की उन सीमाओं के अंदर ही होता है जिसके अर्थ से हम पहले से ही परिचित होते हैं। तब मानव स्वभाव के बारे में और क्या उपयोगी और करने योग्य है, इस बारे में विचारों का आना अवश्यम्भावी है। इसलिए हम बिना सीमाएँ बाँधे इस प्रकार के वक्तव्य नहीं दे सकते जैसे कि यह, 'आदिम लोगों तक सभ्यता पहुँचाने वाले यूरोपीय अन्वेषक थे'। हम पूर्व की पीढ़ियों की भांति नहीं हैं और जानते हैं कि 'सभ्य होना' क्या है और 'आदिम होना' क्या है और इस पर बहस कर सकते हैं, इसका प्रतिवाद कर सकते हैं। इसी तरह जब यह दावा किया जाता है कि किसी समस्या को हल करने का कोई विशिष्ट तरीका 'कारगर है' या कि शोध के द्वारा यह खोजा जाना चाहिए कि 'कारगर क्या है' (क्या है जो काम करता है, प्रभावी है) तो इसमें यह छिपाने का प्रयास कतई नहीं किया जाना चाहिए कि यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होता है कि 'क्या कारगर है' को कैसे परिभाषित किया गया है। इसके पीछे प्राय: वे तात्विक और नैतिक मान्यताएँ काम कर रही होती हैं, जिन्हें स्वीकार नहीं किया जाता, उदाहरणार्थ– इच्छित नतीजे प्राप्त करने का, वह नहीं, यह ही स्वीकार्य तरीका है।

यह देखना रोचक होगा कि एक तरफ शिक्षा-दर्शन ज़्यादा से ज़्यादा आनुभविक, इस अर्थ में होता जा रहा है कि यह उस तरीके के वर्णनों और विवरणों का प्रयोग करता है जो हमने निश्चित विषयों पर बोलने के लिए विकसित किए हैं। किसी ख़ास व्याख्यान में हम जो कहते हैं और तार्किकता के बीच मूल अंतर अब आमतौर पर स्वीकार नहीं किया जाता। जब किसी विशेष संस्कृति या ऐतिहासिक काल या व्याख्यान का उल्लेख करते हुए 'आंतरिक तार्किकता' शब्द का प्रयोग किया जाता है, तब भी उक्त विचार की

प्रतिबद्धता का स्वरूप साफ पकड़ में आ जाता है। दूसरी तरफ, यह जानना भी दिलचस्प होगा कि आनुभविक शोध जिसे शिक्षा के संदर्भ में 'स्वीकार्य' समझा जाता है पिछले कुछ समय में अधिक 'दार्शनिक' हो गई है। अनुभव-निरपेक्ष और अनुभव-सापेक्ष तथा 'तथ्य क्या है' और 'तथ्य क्या होने चाहिए' के बीच कोई ख़ास अंतर नहीं रह गया है। अत: मूल्यों पर भी उसी गंभीरता से विचार किया जाता है जैसा कि आधारभूत सूचनाओं से संबंधित तथ्यात्मक वक्तव्यों पर।

जैसा कि दर्शन में है, दर्शन की विभिन्न धाराओं, तरीकों और आंदोलनों, जो दार्शनिक विषयों की विभिन्न अवधारणाओं को लेकर कार्य कर रहे हैं, की भिन्नता पर कम ध्यान दिया जाने लगा है। (ख़ास तौर से कम-से-कम वहाँ तो ऐसा ही है, जहाँ भिन्नता बनाए रखने की प्रवृत्ति में ढील दे दी गई है)। आनुभविक शोध में यह विचार ज़ोर पकड़ रहा है कि किसी भी विशिष्ट केस के विभिन्न पहलुओं तथा उनके बीच संबंधों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए। इसलिए एक अर्थ में इसे दर्शन और आनुभविक शोध के बीच 'मिलन' की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ पुन: उन पूर्व मान्यताओं को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण होगा जिन पर आनुभविक शोध मुख्य रूप से आधारित हैं और जिस प्रकार के सिद्धांत प्रस्तुत करती हैं।

प्राय: विस्मृत मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध की पूर्व मान्यताएँ

सामाजिक विज्ञान किस रास्ते आगे बढ़े, यह बहस अभी स्पष्ट निष्कर्षों तक नहीं पहुँची है। संक्षेप में, यह बहस उन लोगों के बीच है जो तर्क देते हैं कि 'आनुभविक' प्राकृतिक विज्ञान की 'वैज्ञानिक विधियों' (मुख्य रूप से मात्रात्मक विधियाँ) की नकल की जानी चाहिए और दूसरे वे हैं जो संपूर्ण जाँच और समझ के लिए व्याख्या की भूमिका पर ज़ोर देते हैं (मुख्य रूप से गुणात्मक विधियाँ)। इस तकनीकी चर्चा के एक वास्तविक शोध का प्रारूप, एक ऐसा प्रारूप तैयार करने में, जिसने पूर्व मान्यताओं और धारणाओं की वस्तुस्थिति को जाँच-परख लिया हो, हमारे प्रयासों के लिए दिलचस्प निहितार्थ हैं– एक खगोलवेत्ता ने हाल ही में सूर्य पर आए तूफानों से संबंधित एक साक्षात्कार में बेझिझक कहा 'वहाँ जो हो रहा है उसे हम इस मायने में समझ पाने में असमर्थ हैं कि हम इसकी भविष्यवाणी कर सकें।' वास्तव में यह भविष्यवाणी की ही धारणा है जिसे बहस को समझने के लिए अति आवश्यक माना जाता है। तो अब हम थोड़ा गहराई में जाकर आनुभविक या मात्रात्मक शोध की विशेषताओं को देखेंगे। हालांकि सरसरी तौर पर मैंने नीचे जिन विशेष मुद्दों को अपनी टिप्पणियों में रेखांकित किया है, उनसे आमतौर पर सभी भलीभांति परिचित हैं, फिर भी मुझे डर है कि उनकी प्रासंगिकता को पूरी तरह से ज़ेहन में नहीं लिया जाता। पहले मैं यह दलील देना चाहूँगा कि मात्रात्मक शोध से संबंधित बुनियादी समस्याएँ हैं, जिन्हें ध्यान में रखना ज़रूरी है। मेरी दूसरी दलील यह होगी कि गुणात्मक शोध में भी उतनी ही महत्वपूर्ण कठिनाईयाँ आती हैं।

मात्रात्मक विधि में निश्चयात्मक तत्व को अनिश्चयात्मक से अलग किया जा सकता है। इसमें वैज्ञानिक स्पष्टीकरण का आधार निगमनात्मक प्रणाली होती है, जिसमें वह सब आ जाता है जिसे प्रकृति के एक या अधिक नियमों द्वारा समझना होता है। निश्चयात्मकतावादी की नज़र में यह तथ्य कि हम सब मामलों में सही भविष्यवाणी करने में असमर्थ हैं, कोई उसके विपरीत तर्क नहीं है बल्कि यह मान्यता है कि ऐसा इंसान की अज्ञानता और अन्य सीमाओं की वजह से है। अनिश्चयात्मकतावादी, ऐसा लगता है यह मानते हैं कि 'आवश्यक कारणों' में कम-से-कम कुछ हद तक तो सही स्पष्टीकरण की ताकत होती है जो 'यथेष्ट कारणों' में नहीं होती। आनुभविक विज्ञान की कारण-परिणाम अवधारणाओं के अनुसार हम तथ्यों (सामान्य और विशिष्ट दोनों) को स्पष्ट करने के लिए उन अभौतिक प्रक्रियाओं और अंत:क्रियाओं को प्रस्तुत करते हैं जिनसे वह अस्तित्व में आते हैं, पर इस तरह की यांत्रिकता का, स्पष्टीकरण की मजबूती के लिए, निश्चयात्मक होना ज़रूरी नहीं है; वे शुद्ध सांख्यिकीय हो सकती हैं, और उन्हें प्रभावित किया जा सकता है। इसलिए यह ज़रूरी नहीं कि किसी घटना विशेष का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण सामान्य नियमों और पूर्ववर्ती स्थितियों को सख़्ती से लागू करने पर निर्णित होता हो। इस प्रकार आनुभविक अथवा तार्किक या कि सापेक्षता सिद्धांत के आधार पर प्रत्येक घटना के कारणों को देख पाने की संभावना के प्रति संशय ने एक ऐसे अनिश्चयवाद तक पहुँचा दिया है जो एक अधिक तार्किक विकल्प के रूप में वृहद् स्तर पर उपयोगी हो।

निश्चयात्मक और अनिश्चयात्मक दोनों ही विधियां कठिनाईयों से ग्रस्त हैं। न तो कारणात्मक स्पष्टीकरण, न ही सांख्यिकीय संभाविता की कारणात्मकता इस तथ्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकती है कि हम पक्के तौर पर कह सकें कि नयी परिस्थिति हमारे सामने उपस्थित नहीं होगी। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक स्पष्टीकरण को ऐसी स्थितिकीय पर्याप्तता की ज़रूरत होती है जो ऐसे आनुभविक प्रमाण पर आधारित हो कि कहा जा सके कि सचमुच कुछ हुआ था, जबकि अनुमान लगाना भविष्य में कुछ घटित होने से संबंधित होता है, जिसे कभी भी स्पष्टीकरण और भविष्यवाणी के बीच कालजनित विसंगति का नाम दिया जाता है। यदि निश्चयात्मकतावादी अपना प्रयास जारी रखता है तो वह जो विद्यमान है उसे स्वीकार कर लेता है जबकि इसी को तो सिद्ध किया जाना ज़रूरी था और इस तरह वह तार्किक चक्र में पहुंच जाता है। यह सच है कि कोई भी हो वह अंतत: निश्चयात्मकतावादी के दावे को झूठा साबित नहीं कर सकता, जो कि मूलत: वास्तविकता पर आरोपित एक ढाँचा होता है। एक निश्चयात्मकतावादी (या कहिए सांख्यिकीय कारणात्मकता) पहले से ही इस विचार को स्वीकार कर लेता है कि भविष्य में क्या होगा इसके प्रति कोई भी विश्वस्त नहीं हो सकता। इसका मतलब यह हुआ कि विशिष्ट परिस्थिति में भविष्य में होने वाले परिणामों की घोषणा के सही सिद्ध होने की 50-50%

संभावना बनी रहेगी, जिसे और अधिक सटीक नहीं बनाया जा सकता है। सिर्फ़ एक काम यही हो सकता है कि पहले क्या हुआ था इसका वर्णन या स्पष्टीकरण देने की कोशिश की जाए और यह भी तभी तक किया जा सकता है जब तक कि स्पष्टीकरण के प्रचलित सिद्धांत और उनकी अवधारणाएँ आमतौर पर स्वीकार किए जाते हैं। अत: स्वयं विज्ञान के संदर्भ में कोई आधिकारिक व्यवस्था नहीं दी जा सकती कि निश्चयात्मकतावादी या अनिश्चयात्मकतावादी, शोध कार्य के लिए, सही रूपतालिका है। इसे कभी-कभी तात्विक परिकल्पना का नाम भी दिया जाता है। यह विचार ही स्वयं दर्शन के अनुशासन से आता है, न कि विज्ञान से।

किसी घटना का स्पष्टीकरण देने के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि उस घटना से संबंधित प्रासंगिक परिस्थितियों को इकट्ठा कर समग्रता की दृष्टि से एक समूह में रखा जाए और इनके विद्यमान होने की अवस्था के आधार पर उसके घटित होने की संभाविता को प्रस्तुत किया जाएँ इस केस में स्पष्टीकरण कोई तर्क नहीं है (कुछ नियमों के तहत् स्वीकार्य उस परिवेश और निष्कर्षों के साथ प्रस्तुत एक ढाँचा) बल्कि उस घटना के घटने से संबंधित प्रासंगिक परिस्थितिकीय अवस्थाओं का प्रस्तुतीकरण है और एक वक्तव्य भी कि इन परिस्थितियों में घटना घटने की संभाविता कितनी है। ये सब चीज़ें शैक्षणिक शोध के लिए उपयुक्त प्रतिमान के बारे में और इस बारे में भी कि हमें किस प्रकार का सिद्धांत चाहिए, गंभीर संदेह पैदा करती हैं। यदि मात्रात्मक शैक्षणिक सोच तार्किक समस्याओं से, जिनकी अभी समीक्षा की गई है, आवश्यक रूप से पीड़ित है तो इससे यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं होता कि शैक्षणिक प्रक्रियाओं के लिए यही तरीका अपनाया जाना चाहिए। कहने का आशय यह नहीं है कि इस तरीके को लेकर काम करें तो इससे रोचक नतीजे सामने नहीं आएँगे। कुछ चीज़ों के बारे में हम ज़्यादा जानते हैं (उदाहरणार्थ, किसी घटना की संभाविता कितनी है इस बारे में), लेकिन ऐसे शोध से समझने योग्य अन्य प्रासंगिक पहलू बाहर ही रह जाते हैं, क्योंकि वे मात्रात्मक डिज़ाइन या प्रतिमान के दायरे में सही नहीं बैठते। इस पर हम एक बार फिर गुणात्मक शैक्षणिक शोध के तरीकों को जाँचते समय बात पूरी करेंगे। पूर्व में दिए गए किशोरियों के गर्भ धारण और यूरोपियन अन्वेषकों के उदाहरणों को इस निष्कर्ष के दृष्टांतों के रूप में देखा जा सकता है।

निश्चय ही इसी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचने के अन्य रास्ते भी हैं। उदाहरण के लिए तार्किक प्रत्यक्षवाद की विशेषताएँ (जैसे– बोध, अर्थ और विधि में समानता से संबंधित पूर्व मान्यता); यह तथ्य कि बुनियादी नियम वास्तव में होते ही नहीं हैं। भौतिक और रसायन शास्त्र में भी नहीं; प्राकृतिक वस्तुओं या जीवित रहने के लिए अनिवार्य चीज़ों का अभाव (जैसे– पानी); कानून को तभी लागू करने की स्थिति बनती है जब वही परिस्थितियाँ हों (जिनके लिए कानून बना है) मात्रात्मक आनुभविक शोध में अनिश्चयात्मकतावादी अप्रोच के लिए कानून

संबंधी अंतिम बिंदु ज़्यादा बड़ी समस्याएँ खड़ी करता है, जैसा कि निम्न उदाहरण से स्पष्ट है। यदि कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना (उदाहरण के लिए 'प्रहार') 31 कारकों का परिणाम होती है और हम इन कारकों के संभावित प्रभाव का कारणात्मक समजातीय समूह बनाकर अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें ऐसे 2 (चार अरब से ज़्यादा) समूहों की ज़रूरत होगी, जिनमें से बहुत से खाली होंगे। मात्रात्मक आनुभविक शोध चक्रों में घूमती रहती है क्योंकि यह 'आउटपुट' यानी भविष्यकथन पर आधारित होती है– क्या 'यह कारगर' है? यह प्रश्न निश्चयात्मकतावाद के केस में 'खाली' है। लेकिन विज्ञान में शोध कैसे होते हैं, इसकी यह तार्किक पुनर्निर्मिति सिर्फ़ प्राकृतिक विज्ञान पर ही लागू नहीं होती, बल्कि सामाजिक विज्ञान पर भी होती है। मैंने 'व्याख्या' जैसी अवधारणा के द्वारा इस निष्कर्ष को धुंधला नहीं होने दिया है। इसके स्पष्ट कारण हैं कि मानव व्यवहार का इस प्रकार अध्ययन क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

अब हमें यह देखना चाहिए कि क्या सामाजिक विज्ञान के गुणात्मक तरीके, जिनमें व्याख्या की ज़रूरत होती है, बेहतर स्थिति में हैं। इस विमर्श में डोनाल्ड पेल्किंग होर्न का यह प्रयास विशेष रूप से प्रासंगिक है जिसमें उन्होंने 'वर्णन का विश्लेषण' और 'विश्लेषण का वर्णन' में अंतर किया है। वर्णन के विश्लेषण में विभिन्न मसलों के सामान्य लक्षणों और विशिष्टताओं को ढूँढ़ा और चिह्नित किया जाता है और इनका उपयोग उन मसलों को विस्तृत श्रेणियों के अनुसार परिभाषित करने के लिए किया जाता है। विभिन्न अनुभवों की विशिष्टताओं को जो उनमें समान रूप से मौजूद हैं, चिह्नित करने से संज्ञानात्मक अवधारणात्मक ढाँचा निर्मित किया जा सकता है। रूप-तालिका के विश्लेषण का मकसद केवल श्रेणियाँ ढूँढ़ निकालना और उनका वर्णन करना मात्र नहीं है बल्कि उन श्रेणियों के अंतर्संबंधों का वर्णन करना भी है। जबकि 'वर्णनात्मक विश्लेषण' में आँकड़े सामान्य तौर पर वर्णनात्मक रूप में नहीं होते। इसके बजाय जानकारी घटनाओं और कार्यकलापों से प्राप्त होती है, जिन्हें शोधकर्ता इस तरह व्यवस्थित करता है कि उनसे यह मालूम हो सके कि 'प्लॉट' (कथानक) के विकसित होने में उनकी क्या भूमिका रही है। कथानक या 'प्लाट' वर्णन की कथ्य-रेखा होता है अर्थात् यह एक ऐसा ढाँचा होता है, जो बताता है कि विभिन्न घटनाओं का वर्णन में क्या योगदान है। इसका लेखन विश्लेषणात्मक रूप से आगे बढ़ता है अर्थात् सूचनाओं (डाटा) और कथानक के बीच द्वंद्वात्मक स्थिति। परिणामतः जो वर्णन होगा, वह ऐसा होना चाहिए कि सूचनाओं में सही बैठ जाने पर उसका व्यवस्थित और महत्वपूर्ण होना उभर कर सामने आए, जो कि सूचनाओं में दृश्य नहीं था। नतीजे में जो चीज़ सामने आए उसमें 'वस्तुनिष्ठ' दृष्टि से दिया गया यह विवरण ज़्यादा न हो कि घटना कैसे घटी बल्कि वह कथ्य विषयवस्तु के वर्णन के निर्माण की इकाइयों की श्रृंखला हो। 'वर्णनों के विश्लेषण' में वर्णन ही ज्ञान का स्रोत होते हैं,

जबकि 'वर्णनात्मक विश्लेषण' में वर्णन शोध का परिणाम होते हैं। कुछ लेखकों का विचार कि शोध द्वारा उपलब्ध करायी गई समझ इस प्रकार की होनी चाहिए जैसी कि 'व्यवहार' में देखने को मिलती है .... अर्थात् इसमें वर्णन आम बोलचाल की भाषा में होना चाहिए और एक विशेष प्रकार की पुनर्निर्मिति जो, शायद कहा जा सकता है, दार्शनिक व्याख्या के समीप हो।

प्रश्न है कि वर्णनात्मक स्थिति में स्पष्टीकरण की समस्या से कैसे निबटा जा सकता है? जहाँ तक इसमें यह स्वीकार किया जाता है कि तार्किक क्रम के सिद्धांत संभव नहीं हैं और हम सिर्फ़ क्रम का वर्णन कर सकते हैं, वहाँ तक तो कोई कठिनाई नहीं है, चाहे वे तथ्य नए हों या काल-क्रम में हों। लेकिन ऐसी स्थिति में इन्हें भूतकाल में ही प्रयोग किया जा सकता है, भविष्य काल में नहीं। अवश्य ही आप इसका वर्णन कर सकते हैं कि स्थिति कैसी है (मतलब कैसी थी) लेकिन इस प्रकार के वर्णन का फ़ायदा क्या है? समझने की दृष्टि से बुनियादी तौर पर किसी भी वर्णन का निम्न ढाँचा उभरेगा– चीज़ें इस तरह रखी जाती हैं, और समझ चीज़ों को एक-दूसरे की बगल में रखने से ज़्यादा कुछ नहीं है– अर्थात् समझ तथ्यों की आकस्मिक समीपता को ज़ेहन में लेना और पुनः प्रयोग की क्षमता ही है। जब किसी भी प्रकार की समझ बनती है, और उसके बाद जब उसे प्रस्तुत करते हैं तो वह आवश्यक रूप से उन अवधारणाओं के रूप में होती है जो हमारे पास हैं, और शोधकर्ता इन्हें केवल एक व्यवस्थित क्रम में रखता है जिसके लिए वह संतोषजनक तर्क देता/देती है। ऐसी समझ या तो जानती है कि हम पहले से क्या जानते हैं या फिर खोज में मिली तथ्यों की आकस्मिक व्यवस्था को 'समझ' के नाम का लेबल लगा देती है और इस तरह की कारणात्मक समझ कथित रूप से यह तय करने में मदद करती है कि हमें क्या करना है। मात्रात्मक शोध की कम-से-कम इस सीमा तक तो यही नैतिकता जान पड़ती है कि इसके परिणाम को आउटपुट-निर्देशित संदर्भ में प्रयोग किया जाता है (भविष्य-कथन के लिए या घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने के लिए)। संक्षेप में, मात्रात्मक और गुणात्मक शोध दानों ही, जब कारणात्मक आनुभविक भाषा में संकल्पित किए जाते हैं तो उन चक्रों में गोल-गोल घूमते रहते हैं जिनका हमें बोध नहीं हो पाता। दोनों में से कोई भी विश्वस्त तर्क नहीं देता कि क्या करना चाहिए, यह तय करने के लिए उनका तरीका अन्य तरीके से बेहतर है। इसके बावजूद वे ऐसा प्रभाव छोड़ते हैं कि शोध को मान्य होने के लिए इन्हीं में से कोई तरीका अपनाना पड़ता है या दोनों का मिला-जुला रूप।

आनुभविक शोध और शिक्षा

अब तक मैंने यह तर्क देने की कोशिश की है कि क्या करना चाहिए, इसमें हमें कारणात्मक स्पष्टीकरण से कोई मदद नहीं मिलती। न तो निश्चयात्मक और न ही अनिश्चयात्मक विधि से हम विश्वस्त हो सकते हैं कि अ की जगह

ब को क्रियान्वित करें तो क्या होगा? पर्याप्त जानकारी ही उपलब्ध नहीं है (और कभी होगी भी नहीं) और हम देख चुके हैं कि यदि गुणात्मक शोध की तरफ रुख करें यानी 'समझ' की तरफ तो भी गतिरोध से बाहर जाने का कोई रास्ता नहीं है क्योंकि इसमें भी भूतकाल से कारणात्मक संबंधों की भूमिका होती है। यह विधि उस समस्या या घालमेल को, जो हम अनुभव करते हैं गायब तो कर सकती है लेकिन यह तय करने में मदद नहीं करती कि क्या करना चाहिए, यदि इससे हमारा आशय यह है कि कुछ करें ताकि विशिष्ट परिणाम प्राप्त हो। फिर भी इस प्रकार की जाँच-पड़ताल हमारे ज्ञान के आधार का निर्माण अपरिहार्य रूप से करती है। चिकित्साशास्त्र इस प्रक्रिया का एक अच्छा उदाहरण है। क्योंकि बायोकेमिकल स्तर पर समझते हैं कि शरीर कैसे काम करता है, हमारे पास बीमारियों के बेहतर इलाज हैं। वास्तव में विज्ञान अनेक महत्वपूर्ण तरीकों से बेहतर पुल और इमारतें बनाने में हमें सक्षम बनाकर हमारी मदद करता है। लेकिन शैक्षणिक संदर्भ में क्या किया जाए, इससे संबंधित मसले अलग किस्म के हैं। यदि मुझे कोई पुल पार करना है तो यह जानना प्रासंगिक होगा कि लाखों या करोड़ों में से केवल एक संभावना यह हो सकती है कि पुल ढह जाए बावजूद इसके कि अंततः तो सभी पुल एक दिन टूटकर गिर पड़ेंगे, और कोई भी पुल हमेशा के लिए बचा नहीं रह सकता। लेकिन यदि शैक्षणिक शोध में आनुभविक शोध ने भी उन्हीं मानदंडों को अपनाया जो एक इंजीनियर अपनाता है तो उसका हश्र विफलता को स्वयं ही न्योता देने जैसा होगा। तब वास्तविकता की ओर ले जाने वाला यह सेतु टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाएगा। समाज वैज्ञानिक आमतौर पर इस तथ्य से संतोष कर लेते हैं कि शोध में बहुत से चर (वेरिएबल्स) होते हैं और इसलिए और शोध की ज़रूरत बनी रहती है। उनका अध्यवसाय प्रभावित करता है क्योंकि अधिकांश शोधों में उनकी रूप-तालिका का मॉडल अपने उद्देश्य प्राप्त करने में सफल नहीं होता है। इसका यह आशय नहीं है कि समाज वैज्ञानिकों के पास विवेकशील प्राणी होने के नाते शैक्षणिक अभ्यास हेतु देने के लिए कुछ भी नहीं है, तथ्य यह है कि उनका सूक्ष्म ज्ञान और अंतर्दृष्टि कुछ नया उद्घाटित करने वाली या नियम के रूप में कुछ निर्धारित करने वाली होने के बजाय वर्णनात्मक होती है। अवसर आने पर ही नहीं बल्कि उससे अधिक बार यह दावा किया जाता है कि वर्तमान मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक शोध का बहुत बड़ा हिस्सा अनुपयोगी होता है। इसे एक ऐसे मन बहलाऊ खेल की तरह देखा जाता है जो लोगों को व्यस्त रखता है। यह आपको शतरंज की तरह या उन लोगों की तरह बांधे रख सकता है जिन्हें टिकट इकट्ठा करने का शौक होता है लेकिन अंत में इससे आप कुछ नहीं कर सकते। यह बेकार और निरर्थक होता है।

निश्चित ही ऐसे अन्य कारण हैं जिन्हें हम परिणाम आधारित किसी एकमात्र गतिविधि का आधार नहीं बना सकते। ये कारण नैतिक प्रकार के हैं। फिर, आवश्यक रूप से शिक्षा का संबंध

उन लोगों से है जो अपने लिए दुनिया को समझना चाहते हैं और यह कि उनका दुनिया में क्या स्थान है। यह ऐसी चीज़ है जिसे व्यक्तियों को 'करना' होता है और अन्य कोई उनके लिए यह काम नहीं कर सकता, कम-से-कम ऐसे मामलों में जो उनके लिए सबसे ज़्यादा महत्त्व के हैं। सीखना एक क्रियाशील प्रक्रिया है पर तब नहीं जब लोगों के साथ मात्र कुछ घटित होता है। इसके बिना अवधारणाएँ जैसे 'किसी चीज़ का ध्यान रखना' या 'किसी चीज़ की सार्थकता समझना' अर्थपूर्ण नहीं रहेंगी। इस कारण, ऐसे शोध प्रतिमान जो भूतकाल का निर्णायक (निर्भरता) अर्थ में प्रयोग करते हैं, यह पता लगाने में मदद नहीं कर सकते कि अमुक छात्र भविष्य में दुनिया के बारे में अपनी समझ कैसे बनाएगा। इसका मतलब यह है कि 'कौशल आधारित तरीका' शैक्षणिक संदर्भ में पहले सिरे से ही गलत है क्योंकि किसी चीज़ की सार्थकता समझना एक 'कौशल हो सकता है।', यह संकल्पना ही उचित नहीं है। इसका आशय फिर यह भी होता है कि पढ़ाने जैसी क्रिया या 'प्रैक्टिस' में सिर्फ़ कौशल ही नहीं है किसी चीज़ की सार्थकता को समझने का तरीका किसी दूसरे को इस उम्मीद में ही बताया जा सकता है कि वह उसके लिए मददगार साबित होगा सिर्फ़ इतना भर करने के लिए। बिटगेनस्टाइन ने इस प्रकार के हस्तक्षेप को 'स्मरणक एकत्रित करना' (assembling reminders) कहा था।

कारणात्मकता, चाहे वह निश्चयात्मक हो अथवा संभाव्य, का उपरोक्त मेल नहीं बैठाया जा सकता। गुणात्मक शोध का भी नहीं जिसकी पूर्व मान्यताएँ कारणात्मक और वर्णनात्मक क्षेत्र में आती हैं। इन सब प्रयासों से उत्पन्न सिद्धांत, शैक्षणिक कार्य में जो अत्यंत महत्वपूर्ण है और दांव पर लगा है उसे समझने के लिए पर्याप्त नहीं लगते। वे अनुप्रयुक्त विज्ञान के विचार को अंगीकार करते हैं जिसमें शैक्षणिक गतिविधियाँ 'समझ के एक प्रकार' का परिणाम होती हैं, जो मूलत: आनुभविक हैं और वे उस हस्तक्षेप के परिणामों के महत्त्व को नज़रअंदाज़ करते हैं जो भविष्य के क्रियाकलापों की ओर अभिमुख हैं। जैसा कि एक अच्छी जासूसी कहानी में होता है कि जासूस न्यायालयिक सामग्री, गवाहों के बयान और अंत:प्रेरणा के आधार पर जो घटना हुई उसका पुनर्निर्माण करता है, भाग्य भी साथ दे देता है और समस्या हल हो जाती है। लेकिन क्या यह तरीका हमें इस योग्य बनाता है कि हम कल उठने वाली समस्याओं से निबटने के तरीके के लिए अंतर्दृष्टि प्राप्त कर पाएँ या कि हमें आज कौन से विकल्प चुनने होंगे। ज़रूर, शायद यह संभव हो। लेकिन नयी परिस्थिति में सुराग ढूँढ़ने में यह रुकावट पैदा कर सकता है। क्योंकि पहले जिसने हमें इतना ज़्यादा प्रभावित किया है, उससे हम दूर नहीं हो सकते और यदि हमें ऐसी शोध की आवश्यकता नहीं है जिसका उद्देश्य बुनियादी तौर पर एक ख़ास आउटपुट को नियंत्रित करना हो तो फिर हमें क्या चाहिए? या कि मैं सच में यह तर्क दे रहा हूँ कि कोई फ़र्क नहीं पड़ता हम जो भी करें?

नहीं, मैं ऐसा बिल्कुल नहीं कर रहा हूँ, लेकिन मैं सोचता हूँ कि हमें परावलम्बी रसास्वादन छोड़ देना चाहिए और आनुभविक किस्म के सिद्धांत के साथ जुड़े शक्ति के काम भी। क्योंकि शिक्षा का संबंध विशिष्ट व्यक्तियों से है (शिक्षक, छात्र, माता-पिता, बच्चा) और ख़ास संदर्भों में; शैक्षणिक समझ जो हमसे चाहती है, वह यह कि दुनिया की समझ बनाने की मानव की आवश्यकता की पूर्ति करने की हमारी तैयारी हो। अत: हमें ऐसे सिद्धांत की ज़रूरत है जो इस माँग के साथ न्याय करे और शिक्षा को ही खतरे में न डाल दे।

ऐसी स्थिति में सबसे अच्छा काम जो किया जा सकता है, वह यह पता लगाना है कि किसी की दुनिया की समझ कैसे बनती है? कुल मिलाकर स्थितियाँ कैसी हैं, इसका सामान्य ज्ञान इस काम के लिए प्रासंगिक होगा। आइए इसे नाम दे देते हैं 'स्थानीय सामान्य विवेक'। इस बारे में कि घटनाएँ जिन पर हमारा बस नहीं है कैसे दुनिया से और हमसे पेश आती हैं: 'सेलफोन' और 'चैट रूम' ने कैसे हमारी दुनिया को बदल दिया है, रेफ्रीजरेटर, टेलिविजन, यातायात के साधन, पशुओं के अधिकार की बात और 9/11 तो ऐसा पहले ही कर चुके हैं। इस सीमा तक तो भविष्य पर काबू पाने में वर्णनों द्वारा मदद मिलती है; कुछ ख़ास क्षेत्रों में कारणात्मकता की समझ भी काम करती है। लेकिन यदि कोई निश्चितता नहीं है, हमें नहीं मालूम है कि शिक्षा में विशिष्ट नतीजे सुनिश्चित करने के लिए क्या कदम उठाए जाएँ तो हम कैसे तय कर सकते हैं कि शैक्षणिक शोध में काम करने का सबसे प्रभावी तरीका क्या है? एक नैतिक या कठिन परिस्थिति में क्या-क्या निहित होता है, इस पर गंभीरता से विचार करने के लिए हम निम्न घटनाओं को लेते हैं– समीचीन आदर-सत्कार और विश्वास प्राप्त होने पर उसका हम क्या करेंगे? कठिन परिस्थिति में व्यक्तियों के साथ न्याय के लिए क्या ज़रूरी होगा? ऐसी परिस्थितियों में कविता, कला या नपी-तुली तार्किकता का प्रयोग किया जा सकता है। इससे एक मायने में विधि या तरीके पर चर्चा समाप्त हो जाती है। अंत में, इस कारण कि शिक्षा पर हमारी समझ क्या है, यही इसका निष्कर्ष होगा। अत: जो तरीके ढूँढ़ने होंगे वो यह या वह तरीका नहीं होगा। बिटगेनस्टाइन ने कहा था कि जिस प्रकार विभिन्न चिकित्साएँ होती हैं, उनके विभिन्न तरीके भी होते हैं।

लेकिन 'वर्णन' एक और तरह से भी दिलचस्प हो सकता है। बिटगेनस्टाइन ने सुझाव दिया था कि हमें सिद्धांत बनाने से बचना चाहिए क्योंकि वे शोध में मामलों की भिन्नता को आगे लाने में सक्षम नहीं हैं और हमेशा ही तथ्यों में जितनी समरूपता पाई जाती है उससे अधिक समरूपता वे पहले से ही मान लेते हैं। इससे आगे उन्होंने सुझाया कि हर चीज़ का स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता या उसे समझाया नहीं जा सकता और उन्होंने विभिन्न प्रकार की समझ की ओर ध्यान आकर्षित किया। ऐसे में इस प्रकार के प्रश्न पूछना महत्वपूर्ण हो जाता है कि इंसान के लिए महत्वपूर्ण क्या है? और वह क्या है जो

अन्य किसी दूसरी चीज़ के लिए आवश्यक रूप से उपयोगी हुए बिना प्रासंगिक हो? बिटगेनस्टाइन के अनुसार समझ और स्पष्टीकरण में महत्वपूर्ण अंतर शोधकार्य में संलग्न लोगों पर पड़ने वाले भिन्न प्रभावों में दिखता है:

वर्णन हम पर जो प्रभाव छोड़ता है, उसकी तुलना में स्पष्टीकरण डांवाडोल स्थिति में होता है। प्रत्येक स्पष्टीकरण एक परिकल्पना है। लेकिन परिकल्पना का स्पष्टीकरण उस व्यक्ति की कुछ ही मदद कर पाएगा जो प्यार के कारण विचलित है। यह उसे शांत नहीं करेगा।

मानविकी विज्ञान के शोधकर्ता इससे घबरा जाएँगे। इस समय शोध के 'वर्णन रूपी अनुसंधान' की अपेक्षा, 'व्याख्या रूपी अनुसंधान' अधिक किए जा रहे हैं। इसी प्रकार, कहने की ज़रूरत नहीं कि आज का अकादमिक मनोविज्ञान, जो पॉपर की विचारधारा के अनुसार चल रहा है, को उस कार्यक्रम से सामंजस्य बैठाने में बहुत दिक्कत होगी, उसी भांति जब 50 वर्ष पूर्व भी यह उसे पचा नहीं पाया था। उन शैक्षणिक शोधकर्ताओं के बीच में भी जो मात्रात्मक और गुणात्मक शोध डिज़ाइनों की वैधता को स्वीकार करते हैं, व्याख्या रूपी अनुसंधान को प्राय: एक समस्या के रूप में देखा जाएगा। यह पूछा जाएगा कि इन डिज़ाइनों का आशय यदि ऐसे सैद्धांतिक तरीके (अप्रोच) की निर्मिति नहीं है जो भविष्य के मसलों के परीक्षणों में उपयोगी हो, तो और क्या है? क्या फिर हम यह समझें कि सब सिद्धांत फालतू की चीज़ हैं? नहीं, बात ठीक इसके विपरीत है। जैसा कि मैं संकेत दे चुका हूँ कि, किस प्रकार के शैक्षणिक सिद्धांत की हमें ज़रूरत है, यह सोचते समय हम शिक्षा के अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू को भूल जाते हैं। इसे शिक्षा की विशेषताओं को बताते समय मैंने 'अपने लिए समझ बनाना' के रूप में संप्रेषित कर दिया था। इसके बारे में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है यदि दर्शन में सुकरात की मिसाल को हम गंभीरता से लें।

दर्शन करने का नेहामास का वैकल्पिक तरीका

अपनी पुस्तक 'जीने की कला' (दी आर्ट ऑफ लिविंग) में नेहामास का उद्देश्य जीवन में दार्शनिकता के लिए स्थान उपलब्ध कराना है, जो एक विकल्प तो हो पर ज़रूरी नहीं कि प्रतिस्पर्धात्मक हो, उस तरीके के लिए जिसमें हम आमतौर पर दर्शन को काम में लेते हैं, उसे आचार-व्यवहार में उतारते हैं। वे कहते हैं कि कुछ दार्शनिक सामान्य और महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ना चाहते हैं बिना इस पर विश्वास किए कि उन उत्तरों का उस व्यक्ति की किस्म से सीधा संबंध है जो वे बनाना चाहते हैं। अन्य लोग यह मानते हैं कि ज़रूरी यह है कि सवालों के जवाब सही हैं या नहीं और यह कि सामान्य तौर पर सही विचार सही इंसान बनाते हैं। नेहामास का विचार है कि जो व्यक्ति विशिष्ट सिद्धांतों को अपनाने के परिणामस्वरूप अपने आत्म का निर्माण करता है, वह सिर्फ़ उसकी जीवनी को निर्मित करने वाली सामग्री नहीं है, बल्कि वह तो एक दार्शनिक और साहित्यिक

उपलब्धि है। इस प्रकार का आत्म एक प्रकार का कच्चा खाका है जिसे इसी मकसद से दूसरे भी अपना सकते हैं, नज़रअंदाज़ कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं, जैसे-जैसे उनका अपना आत्म, अपना स्वरूप ग्रहण करता जाता है। यह दार्शनिक उपलब्धि इसलिए है क्योंकि इस प्रक्रिया में सृजित आत्मा की विषय-वस्तु और प्रकृति ऐसे मुद्दों पर बने विचारों पर निर्भर करती है जो परंपरागत रूप से दार्शनिक समझे जाते हैं, यह साहित्यिक है क्योंकि उन दार्शनिक विचारों में परस्पर संबंध केवल व्यवस्थित तार्किक अंतर्संबंधों का मामला नहीं है बल्कि इसके केंद्र में एक शैली (जीवन जीने की) की बात भी है।

यह प्रश्न उन विचारों को एक साथ रखने के बारे में है ताकि उनमें नितांत तार्किक संबंध न हो तो भी, उनसे एक मनोवैज्ञानिक और व्याख्यात्मक आधार प्राप्त हो, जिसके बल पर उन्हें एक सुसंगत लक्षणों की इकाई में शामिल किया जा सके। यह कहना उचित होगा कि वे सब विचार एक व्यक्ति में भी हो सकते हैं अर्थात् दूसरी तरह से कहें तो इस तरह के विचारों के एक साथ होने से एक विशेषता का निर्माण होता है, इसी प्रकार से जैसे साहित्यिक चरित्र निर्मित होते हैं, जिनमें वह सब शामिल होता है जो वे उन साहित्यिक कृतियों में कहते और करते हैं, जिनमें उन्हें प्रस्तुत किया जाता है। जीने की कला के दार्शनिक प्रायः दोहरी और अधिक पेचीदा भूमिका निभाते हैं, वे दोनों ही होते हैं, उनकी रचनाओं द्वारा गढ़े गए पात्र भी और उन रचनाओं के लेखक भी जिनमें ये पात्र मौजूद होते हैं। सृजनकर्ता और सृजित पात्र ये दोनों एक ही व्यक्ति होता है।

नेहामास यद्यपि यह स्वीकार करते हैं कि ऐसी कोई एकमात्र जीवनशैली नहीं है जो सबके लिए सर्वोत्तम हो और दार्शनिक जीवन जीने के अनेक प्रशंसनीय तरीकों में एक हो (जीने की कला के दार्शनिक एक जीवनशैली को केंद्रीय विषय बनाकर सुस्पष्ट और सटीक भाषा में प्रस्तुत करते हैं)। उनकी रचना में जिस जीवन को प्रस्तुत किया जाता है, उसकी रचना वे दार्शनिक जीवन जीने से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर चिंतन-मनन के बाद करते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जीने की कला व्यावहारिक होने के साथ-साथ कुछ मायनों में राजनीतिक भी है क्योंकि इसका संबंध उससे जो पढ़ाया जाता है, एक अभ्यास है जो सर्वप्रथम लेखन से प्राप्त होता है। वास्तव में, यह कल्पना करना कठिन है कि कोई व्यक्ति बिना लेखन के अपनी जीने की कला को कैसे प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि जटिल विचार जिनकी इस कला को ज़रूरत होती है, अन्य किसी तरह अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते। निश्चय ही सुकरात इसका अपवाद था लेकिन फिर यह भी तो है कि उसके विचार प्लेटो की रचनाओं का आधार बने और जब कोई इसके बारे में विश्वस्त नहीं है और इसे सिखाता नहीं है, उसकी कला दीर्घावधि में एक मॉडल का रूप नहीं ले सकती। जीने की कला के रूप में दर्शन का उद्देश्य निश्चित ही जीना है लेकिन यहाँ ऐसे जीवन की ज़रूरत है जिसका

अधिकांश भाग लेखन के लिए समर्पित हो। इस प्रकार जीने की कला 'नैतिकतावादी' होती है। 'सार्वभौमिकता' भी इसमें सबसे कम होती है। उसी भाव से जैसे कि सुकरात, माइकेल द मोन्टेन, फ्रेडरिक नीत्शे और माइकेल फूको ने जीने का एक तरीका प्रस्तुत किया जिसे केवल वे स्वयं या शायद कुछ अन्य ही अपना सके। उनका विश्वास था कि वे जो उनका अनुकरण करना चाहते हैं, अपनी निजी जीने की कला और अपना आत्म-विकसित करें, यदि कोई ऐसा करता है तो उसका मॉडल दूसरों के मॉडलों से भिन्न होगा। इस सब में व्यंग्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है विशेष रूप से सुकराती शैली में।

यह विचार शैक्षणिकता से भरा हुआ ही नहीं है बल्कि स्वयं शिक्षा दर्शन के लिए भी बहुत प्रासंगिक हो सकता है। शैक्षणिक शोधकर्ता सामान्य रूप से और शिक्षा दार्शनिक विशेष रूप से बड़ी सीमा तक अपने लेखन कार्य से ही जीवन-यापन करते हैं, और अपने संपूर्ण जीवन में बहुत सारा समय लेखन में लगाते हैं। इस विचार का एक अच्छा कथन है कि 'दर्शन जीने के बारे में होता है' तो शिक्षा-दर्शन शिक्षा के बारे में होता है। लेकिन एक महत्वपूर्ण अंतर है, यद्यपि दार्शनिक जीवन ज़िंदगी जीने का एक तरीका है, यह स्पष्ट नहीं है कि शिक्षा-दर्शन को भी उसी प्रकार 'शिक्षा के तरीके' के रूप में लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यदि जीने के तरीके के रूप में अपने आपको शिक्षा (के कार्यों) में व्यस्त रखता है, सार्थक है। इन विचारों के बीच में सहसंबंध बहुत से प्रश्न भी पैदा करते हैं। क्या इस प्रकार का नैतिकतावादी जीवन संभव है? क्या यह ऐसी चीज़ है जिसे आजकल शिक्षा के उद्देश्य के रूप में किया जा सकता है? और क्या यह शिक्षा दर्शन के लिए एक उपयोगी मॉडल हो सकती है। (यदि हाँ, तो किस हद तक)?

क्या सब सिद्धांत उपलब्ध हैं? व्यंग्य के बारे में एक स्मरण

जीने की कला का विचार अर्थात् अपने स्वयं के आत्म को विकसित करना (और जहाँ तक गुण का संबंध है वैसे शिक्षक हैं नहीं), प्लेटो सुकरात के समय का है। दिलचस्प बात यह है कि नेहामास विभिन्न तरीके प्रयोग में लेता है जिनमें सुकरात के चरित्र को विकसित किया जाता है। सुकरात ने कहा था कि वह अनभिज्ञ है और यह मानने से भी इंकार कर दिया था कि वह 'शिक्षक' है। उसने छात्रों को उन प्रश्नों के उत्तर नहीं बताए जो उन्होंने उससे पूछे थे, जबकि वह इन उत्तरों को जानता था। बजाय इसके, उसने इनके उत्तर 'खोजने' के लिए छात्रों को उकसाया ताकि वे अंतर्दृष्टि (किसी वस्तु की वास्तविक प्रकृति को समझने की क्षमता) विकसित कर सकें। शुरू से संवादों में (चारमिडेस लाचेस, यूनाइफ्रोल) वह शब्द के प्राचीन अर्थ में कट्टरवादी था। उसका विश्वास था कि वस्तुओं की प्रकृति की सत्यता को जानने की ज़रूरत है, विशेष रूप से गुणों को और यह ज्ञान उसके पास है। उसका व्यंग्यात्मक आग्रह कि न तो वह यह जानता है कि गुण

क्या है और न ही उसमें यह सिखाने की क्षमता है, एक ऐसी यांत्रिकता में बदल जाता है जो निरुत्साहित छात्रों को प्रेरित करने का काम करती है। सुकराती व्यंग्योक्ति तथा प्लेटो की रचना में दोहरी भूमिका होती है। यह संवादों की विषयवस्तु का हिस्सा होती है और सुकरात के चरित्र को और दूसरे लोगों के साथ इसके संबंधों को निरूपित करती है, किंतु यह एक औपचारिक ढाँचा भी है। ख़ासतौर से जब हम सुकरात को उससे वार्तालाप करने वालों को प्रभावित करने का प्रयास करते हुए देखते हैं, नेहमास का कहना है, हम प्लेटो द्वारा प्रभावित किए जा रहे होते हैं।

ज़ाहिर है, व्यंग्योक्ति में विश्वास करने वालों की उनकी अपनी ही युक्ति में फंसने की संभावना अधिक होती है। क्योंकि वे यह मानते हैं कि वे शिकार से श्रेष्ठ हैं (यह बात केवल व्यंग्योक्ति के सर्वाधिक सरल मामलों के लिए ही सही है। उसका उल्टा कहना जो आप कहना चाहते हैं)। दूसरे प्रकार की व्यंग्योक्तियाँ जैसे कि नाटकीय व्यंग्योक्ति, भाग्य अथवा परिस्थितियों से संबंधित व्यंग्योक्ति, रूमानी व्यंग्योक्ति और वक्तृता की व्यंग्योक्ति में जो कहा जाता है और जो कहने का आशय होता है इसके बीच काफ़ी पेचीदा संबंध होता है। संगोष्ठी अथवा सिंपोज़ियम में (ख़ास तौर से ऐल्सीबियाडेस और सुकरात के बीच जो घटना हुई उसमें) एक और अधिक दिलचस्प उदाहरण मिलता है। इसमें शब्द जो सुझाते हैं हम उससे भिन्न हैं, यह बहाना बनाने की छूट जो देती है उसे व्यंग्योक्ति के रूप में देखा जाता है; वास्तव में हम जो हैं या वास्तव में हम कोई हों यह तय करने के दबाव के बिना हम अपने खेल को खेल सकते हैं। व्यंग्योक्ति को दो-मुँहे वक्ता की दरकार होती है और दोगले श्रोताओं की—इससे श्रोताओं को आपके मंतव्य की, उनकी अपनी व्याख्या के अनुरूप काम करने की अनुमति मिल जाती है। उनकी जो भी समझ बनी हो, ज़रूरी नहीं कि यह वो समझ हो जो आपके शब्दों से बनी हो। इसलिए क्या एल्सीबियाडेस के प्रस्ताव का सुकरात द्वारा व्यंग्यात्मक अस्वीकार गुण नहीं बल्कि लचीलापन प्रस्तुत करता है, यह मामला अनिर्णीत है। व्यंग्यात्मक होने के कारण सुकरात ने आशय और उद्देश्य को छिपाया है। इस गहन अर्थ में व्यंग्योक्ति हमेशा ही स्पष्ट सत्य को नहीं छिपाती, वरन् व्यंग्योक्ति का प्रयोग स्वयं व्यंग्योक्ति की तरफ भी किया जा सकता है। यह बच निकलने या साहस अथवा दृढ़ विश्वास की कमी की बात नहीं है बल्कि इस बात की स्वीकृति है जैसा कि कई बार होता है जब हम विश्वस्त नहीं हो सकते, इसलिए नहीं कि हमें पर्याप्त जानकारी नहीं है बल्कि इसलिए कि अनिश्चितता व्यंग्योक्ति का सार है। सुकरात के बाद के सवालों की यही विशेषता है, जहाँ उसका चित्रण इस तरह किया जाता है कि जो वह कहता है वही उसका आशय भी हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। जब सुकरात ने कहा कि उसके पास नैतिक ज्ञान की कमी है तब उसने जो कहा, वही उसका आशय था यदि ज्ञान में निगमनात्मक निश्चितता और त्रुटिहीनता

है तब, लेकिन यदि ज्ञान को उसकी (सुकरात) द्वन्द्वात्मक जीतों का त्रुटियुक्त उत्पाद समझा जाता है तो जो उसने कहा वह उसका आशय नहीं है।

सुकरात के पास जो ज्ञान था वह ऐलेंचस के ज़िंदगी भर के अभ्यास पर आधारित है। ऐलेंचस अर्थात् दूसरों के विचारों पर प्रश्न उठाते हुए अपने स्वयं के विचारों पर लगातार प्रश्न उठाते रहना। नेहामास हमें इस ज्ञान के कुछ उदाहरण देते हैं जैसे यह विचार कि अन्याय करने के बजाय स्वयं कष्ट पाना श्रेयस्कर है या कि मृत्यु का भय उसे शर्मनाक बना देता है या अपने से वरिष्ठ के आदेशों का उल्लंघन करना। सुकरात जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता था और जो ज्ञान, उसके अनुसार, हस्तशिल्पियों के पास है उसमें वैषम्य देखता था। हस्तशिल्पियों की समस्या यह थी कि वे संभवत: यह विश्वास करते थे कि उनके शिल्प का ज्ञान उन्हें अच्छा जीवन जीने का ज्ञान भी देता है। कुतर्की (सोफ़िस्ट) यह दावा करते हैं कि आरेटे (किसी व्यक्ति या वस्तु के सद्गुण, प्रवीणता आदि) का तकनीकी या विशेष ज्ञान उनके पास है। लेकिन सुकरात के अनुसार यह संभव नहीं है। यद्यपि शिल्प से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह शुद्ध तार्किक नहीं होता और इसे निश्चित रूप से नियमों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसके बावजूद यह ज्ञान स्थायी होता है। एक बार प्राप्त करने के बाद इसे खो नहीं सकते। आपके उत्पाद उच्च गुणवत्ता के होते हैं और कम-से-कम सिद्धांत रूप में तो आप इसे दूसरों को समझा और दे सकते हैं। सुकरात मानता था कि उसके पास आरेटे के ज्ञान की कमी है।

आरेटे को मोटे तौर पर 'सद्गुण' कहा जा सकता है। सुकरात जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करते हैं, उस दृष्टि से यह परिभाषा बहुत संकीर्ण है। और जो 'प्रवीणता' की नयी अवधारणा है, नेहामास की राय में, वह अधिक कमज़ोर, रंगहीन और अस्पष्ट है। आरेटे को मानव के अलावा अन्य सजीव और निर्जीव प्राणियों और वस्तुओं (पशु, बर्तन, यंत्र इत्यादि) की विशेषताओं के संदर्भ में पूर्णरूप से उपयुक्त रूप में प्रयोग किया जा सकता है। नेहामास 'सफलता' को प्राथमिकता देते हैं, वह गुणवत्ता या गुणवत्ता का समूह है जो व्यक्ति (या वस्तु) को उस समूह के असाधारण सदस्य होने का दर्जा दिलाती है जिससे वह संबद्ध है। यह व्यक्ति को न्यायोचित रूप से महत्वपूर्ण बनाती है। इसमें तीन चीज़ें शामिल होती हैं– चीज़ों का आंतरिक ढाँचा और गुण, उनकी ख्याति और लोग जो उनकी सराहना करते हैं। क्या आरेटे सिखाया भी जा सकता है? यह प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति को अपने समकक्षों के बीच न्यायोचित प्रतिष्ठा पाने के लिए अपनों के बीच क्या करना होता है– सुकरात को यह बात मालूम थी। आरेटे वह नहीं सिखा सकता था। पहला कारण, वह नहीं जानता था कि आरेटे क्या है और दूसरा कारण, अन्य लोग उससे बेहतर नहीं थे जैसा कि उसकी ऐलेंचस की परीक्षाओं से सिद्ध हो चुका था। इसका निगमन और निश्चितता की सीमाओं से कोई संबंध नहीं है (ये समस्याएँ चिकित्साशास्त्र में भी मौजूद

हैं)। समस्या यह है कि आरेटे का इनमें से कोई भी अर्थ अविवादास्पद रूप से मानवीय गुणों के किसी खास समूह से जुड़ा हुआ नहीं है। इसके अतिरिक्त और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि आत्म के पोषण के विशेषज्ञ से, शरीर के पोषक खाने के विशेषज्ञों से भिन्न, आरंभिक संव्यवहार के बाद सलाह नहीं ली जा सकती क्योंकि इस संव्यवहार में ही सब कुछ शामिल है। आरेटे के आचार्यों से तब तक संपर्क नहीं करना चाहिए जब तक यह मालूम न हो कि जो ज्ञान वह देंगे वह आत्म को नुकसान पहुँचायेगा या फ़ायदा। तो इस समस्या का हल क्या है?

चूँकि सुकरात की ऐलेंचस को जारी रखने की इच्छा थी जब तक कि कोई एक व्यक्ति भी ऐसा चाहता। दोनों व्यक्तियों द्वारा आवश्यक समझ बनाने पर ही यह प्रयास सफल हो सकता था। अंत में मिली मान्यता केवल 'साझी' ही हो सकती है। प्रत्येक भागीदार को एक दूसरे के विचार से और इसलिए तौर-तरीकों से भी बिना दबाव के सहमत होना ज़रूरी होता है। अत: दोनों अपने बाकी विश्वासों और सिद्धांतों के झगड़े में पड़े बिना इस परिभाषा के आकार पर काम कर सकते हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि एक व्यक्ति जिसने, नेहामास के अनुसार सुकरात को एक अच्छे इंसान के रूप में पहचाना जो कि वह था भी, वह वो व्यक्ति है जो संवादों में कहीं नहीं है और वह स्वयं प्लेटो है। सुकरात का चरित्र एक साहित्यिक पात्र के रूप में यहाँ खत्म नहीं होता। दूसरे शब्दों में, सुकरात एक वास्तविकता है क्योंकि हम उसकी दुनिया में बसे हैं न कि वह हमारी दुनिया में। नेहामास का कहना है, सुकरात यह चाहता है कि हम उसकी नयी जीवन शैली को अपनाएँ, जबकि उसके पास हमें सहमत करने के लिए कोई तर्क नहीं है कि हमें यह अवश्य करना चाहिए– 'हम दार्शनिक जीवन से जिसकी अपेक्षा कर सकते हैं वह यह कि विचार और कर्म दोनों में, जिनसे दार्शनिक जीवन बनता है, संगति हो, यह नहीं कि कर्म विचार का नतीजा हो। 'विचार' और 'कर्म' दोनों की ही ज़िंदगी में बराबर की हिस्सेदारी है, इसलिए कोई कारण नहीं कि एक दूसरे से पहले हो।' यहाँ अंतत: स्पष्ट हो जाता है कि क्यों नेहामास मानते हैं कि प्लेटो ने पाठक के साथ न्याय नहीं किया।

उपरोक्त विचारों से शैक्षणिक सिद्धांत और शोध के बारे में बहस के अनेक प्रासंगिक मुद्दे उठते हैं। बहुतों के लिए शिक्षा जिसमें विटगेनस्टाइन और नीत्शे भी शामिल हैं, अंतत: आत्म-शिक्षण है। यह बात सुकरात के मत के समानांतर है कि जहाँ गुण से सरोकार होता है वहाँ कोई शिक्षक नहीं होते। लेकिन ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि कम-से-कम जैसा जेनोफान ने चित्रित किया है, सुकरात अपने दोस्तों के लिए अत्यंत उपयोगी और हितैषी था—इस व्याख्या का मोंटेन भी समर्थन करते हैं जिन्होंने सुकरात के इन सामान्य नीति वचनों, 'जितनी ताकत तुम्हारे पास है उसी के अनुरूप जीओ' और 'प्रकृति के नियमों का पालन करो' पर ज़ोर दिया। इस प्रकार के नीति वचन शिक्षा के 'आरंभ की ओर संकेत करते हैं'। इससे

आगे वे यह बताते हैं कि आत्म की ओर जाने वाला मार्ग दूसरों के मार्ग को पार करके अवश्य गुज़रता है, कभी-कभी क्रूरतापूर्ण तरीके से भी, लगभग खालिस तौर पर लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन की तरह। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि बिटगेनस्टाइन और नीत्शे के दर्शन में भी इस तरह के निहितार्थ हैं। अत: जीने की कला' और 'ऐसा बनना जो एक मॉडल से भिन्न हो' के प्रति आग्रह किसी-न-किसी प्रकार के 'आरंभ' को ज़रूरी तौर पर पहले से ही मान लेता है। आगे इसका समर्थन आरेटे के अर्थ में 'सफलता' के रूप में मिल सकता है। 'ख्याति' के ज़रिये, जिसका आधार प्रशंसक भी होते हैं, आरंभ करने के लिए कुछ समान भूमि तलाशी जा सकती है। इससे एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या कोई सामान्य आधार है? इस मुद्दे पर मैं बाद में वापस लौटूंगा।

हमें किस प्रकार के सिद्धांत और शोध की आवश्यकता है?

जैसा कि मैंने यहाँ तर्क दिया है, शैक्षिक संदर्भों में शिक्षा दर्शन से या अधिक सामान्य रूप में शैक्षणिक सिद्धांत से प्राप्त अंतर्दृष्टि का प्रयोग समीचीन नहीं होगा। मुझे लगता है इस विचार को अधिकांश सिद्धांत निर्माता और उपयोगकर्ता दोनों ही शिक्षाशास्त्रीय कारणों और नैतिक कारणों से भी स्वीकार करते हैं। हालाँकि सिद्धांत के प्रकार के बारे में मत अलग-अलग हैं। आनुभविक की अधिकांश गतिविधियाँ भविष्य कथन के तार्किक ढांचे पर आधारित हैं। यह खतरों और आकस्मिकताओं से बचने के प्रयास में प्राकृतिक विज्ञान के सदृश होना चाहती हैं, किंतु ऐसा लगता है कि शोध को यह अंतिम रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि शैक्षिक संदर्भों में यह संभव नहीं है। आखिरकार इन सबके उपरांत जिन अंतर्दृष्टियों की हमें आवश्यकता है वे दार्शनिक चिंतन-मनन से प्रभावित और मिलती-जुलती हैं।

सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि दार्शनिक तर्क में कुछ प्रश्न अर्थहीन हो जाते हैं। दार्शनिक इसका विरोध कर सकते हैं और अपनी कृति के एक और पठन के लिए आमंत्रित कर या एक और व्याख्या प्रस्तुत कर उत्तेजित कर सकते हैं। लेकिन वे मजबूर करने वाला तर्क नहीं थोप सकते चाहे वह विशिष्ट शैक्षणिक प्रैक्टिस के समर्थन की बात हो या विशिष्ट शैक्षणिक सिद्धांत के पक्ष में तर्क करने की। सुकरात के लिए कम-से-कम एक विशिष्ट पठन में जीवन से संबंधित सवाल के उत्तर को 'और इसलिए क्या करना चाहिए?' इससे संबंधित होने पर खुला रखना पड़ा था। इस व्याख्या को कुछ लोग इस अर्थ में लेंगे और इस बात पर ज़ोर देंगे कि प्रत्येक उत्तर आवश्यक रूप से अनंतिम होता है। यदि इस संबंध में प्लेटो की भूमिका के बारे में नेहामास का कहना सही है और हम प्लेटो द्वारा पाठक को युक्ति द्वारा प्रभावित करने की बात को सराहनीय मानते हैं, तब यह श्रेयस्कर हो सकता है कि हम ऐसी स्थिति को स्वीकार करें कि अंत में जीवन के इस या उस पक्ष के बारे में केवल एक विशिष्ट चीज़, फैसला या

प्रतिबद्धता को प्रस्तावित किया जा सके। इस विचार के मद्देनज़र एक स्पष्ट स्थिति निर्णीत हो जो तटस्थ रहने के बजाय चीज़ों को 'कैसा होना है' पर ज़ोर दे और जिसमें पूर्व मान्यताओं को चिह्नित करने और पहेलियों को सुलझाने का प्रयास हो। तब क्या यह बेहतर नहीं होगा कि इस अधिकार को आरंभ से ही स्वीकार किया जाए और इस प्रकार हम अपने दार्शनिक मनन-मंथन में विशेष मार्ग या दिशा के प्रति स्पष्ट रूप से प्रतिबद्ध हों? किसी चीज़ को पूर्ण रूप से त्रुटिहीन बनाने के तथाकथित प्रयास में भी कुछ तत्वों को बाहर कर देने की ज़रूरत होती है। दार्शनिक की हैसियत से अपने तर्कों में हमें शैक्षणिक विषयवस्तु को अवश्य डालना चाहिए। अन्यथा, सब कुछ जो हम करते हैं, वह है दूसरों के रास्ते में आड़े आना और उनकी बार-बार आलोचना करना।

प्रतिबद्धता की ओर मुड़ने और नेहामास का अनुसरण करने के खिलाफ़ तर्क में इस तथ्य को लाया जा सकता है कि सुकरात प्लेटो का एक साहित्यिक पात्र था। इस बात को याद रखना महत्वपूर्ण है कि शिक्षाशास्त्री या शिक्षक जो कि बच्चों के लिए या सीखने वालों के लिए आवश्यक रूप से दुनिया का एक ढाँचा निर्मित करते हैं, कभी भी पूर्ण रूप से अप्रतिबद्ध नहीं हो सकते। शिक्षक केवल अपने उन छात्रों के बारे में जो शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं (अर्थात् दीक्षित हो चुके हैं) साधारण अर्थ में या जहाँ उन्होंने स्वेच्छा से स्वयं एक स्वतंत्र अभिरुचि को अपना लिया हो, आत्म-संतुष्टि की विडंबना में जी सकते हैं। ये कहने का मतलब यह नहीं है कि साहित्यिक पात्र प्रेरित नहीं कर सकते या कि विडंबना कुछ शैक्षणिक संदर्भों में अत्यधिक मददगार नहीं हो सकती। बल्कि मेरा मंतव्य यह है कि एकमात्र व्यंग्य को अपने आप में पर्याप्त समझना या अनन्य मॉडल के रूप में देखने से काम नहीं चलेगा। स्थितियाँ कैसी हैं या अधिक सटीक ढंग से कहें तो स्थितियाँ कैसी थीं, यह जानना महत्वपूर्ण है। इस प्रकार का ज्ञान लोगों को अपने प्रयासों में खतरों से बचने में और अपनी ज़िंदगी और दुनिया को व्यवस्थित रूप देने में मदद करता है। इस मंतव्य को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान में प्रभावी उपलब्धि केंद्रित विमर्श को अंगीकार कर लेना चाहिए जो नैतिक कर्मों में आगे खतरों को दर-किनार करने या बाहर रखने का और मापनीय परिणामों को मानवीय उपलब्धि और प्रवीणता के प्रतिमान बनाने का प्रयास करता है।

हम एक अविश्वास के युग में जी रहे हैं और ऐसे समय में यह पहले ही मान लिया जाता है कि स्वनिष्ठता ऐसा क्षेत्र है जिसमें आत्मनिर्बाध रूप से अपने मतों को रखा जा सकता है, का एकमात्र विकल्प विज्ञान और सांख्यिकी की कड़ी वस्तुनिष्ठता है। ऐसा क्षेत्र जिसमें आत्म को बाहर कर दिया जाता है। लेकिन इन दो चरम सीमाओं के बीच भी स्थान है और अच्छा ख़ासा स्थान है। इस स्थान में अन्य चीज़ों के साथ, निर्णय करने की क्षमता स्थित होती है। ज़िंदगी के ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं, साहित्यिक समालोचना से लेकर खेलों की

अंपायरी तक जहाँ निर्णय को बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। कितनी ही कड़ाई से खेल प्राधिकरण नियमों का निर्धारण करें कि किसी क्रिया को करने का कोई ख़ास तरीका नियमसंमत नहीं है, फिर भी किसी-न-किसी निर्णायक की आवश्यकता ज़रूर होगी कि कोई क्रिया नियमों के तहत् मान्य है अथवा नहीं। किसी भी चीज़ के लिए नियम-कानून बनाने के प्रयास के केंद्र में एक प्रकार की अस्वीकार्य 'सीमा बांधने' की प्रक्रिया काम करती है। तार्किक दृष्टि से यह विशिष्ट चीज़ों, अभिव्यक्तियों या गतिविधियों को 'आवश्यक और पर्याप्त परिस्थितियों' के दायरे में परिभाषित करने से संभव होता है, ताकि उन्हें बिना अस्पष्टता के उद्धृत किया जा सके और हम उनकी तुलना कर सकें और उनके बारे में सार्थक बातचीत कर सकें। लेकिन जैसा कि बहुत से ज्ञान-मीमांसकों ने तर्क दिया है, यह किसी स्थल से दृष्टिपात किए बिना नहीं हो सकता। हम हमेशा एक ख़ास दुनिया के प्रभावों में दबे होते हैं (सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक)— एक ऐसी अवस्था जिससे हमारा नज़रिया बनता है, जहाँ कुछ चीज़ें हमारे लिए मायने रखती हैं और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए, यौनिक छेड़छाड़ का अर्थ जायरे और नार्वे में समान नहीं है, न ही इसका अर्थ अपरिहार्य रूप से विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में किसी विशिष्ट समाज में लगातार एक-सा रहा है। हमें याद रखना चाहिए कि किसी महत्वपूर्ण घटना के अनेक पहलुओं को एक तरफ रखने और नज़रअंदाज़ करने पर ही ऐसी तुलना करना संभव होता है। एक मुद्दा यहाँ यह उठता है कि क्या इस तरह आगे बढ़ने से कोई लाभ होगा? हम एक जाल में फंसने का जोखिम ले रहे हैं। प्याज़ की परतें उतारने जैसा जोखिम। यदि आप सार तत्व की तलाश में परतें उतारते जाएँगे तो अंत में आपको कुछ भी नहीं मिलेगा।

इसी तरह स्टीफेन तोलमिन शेक्सपियर के समय के और वर्तमान रंगमंच की तुलना करते हुए कहते हैं कि शेक्सपियर के समय में दर्शक नाटक का हिस्सा होते थे, उसके बाद की सदियों में दर्शकों को कलाकारों से अलग कर दिया गया। तोलमिन इसे एक अलंकार के रूप में यह दिखाने के लिए प्रयोग करते हैं कि देकार्ते के बाद ज्ञान की स्थिति क्या रही। हम वस्तुनिष्ठ दर्शक हो गए हैं और इस प्रक्रिया में हमने एक प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है पर दूसरे प्रकार के ज्ञान से संपर्क टूट गया है। कहने का तात्पर्य यह कि अब हमें चीज़ों का उनके अर्थों में उनके अंतर्संबंधों का बोध नहीं है। हम उन्हें उनकी वास्तविकता का अध्ययन करने के लिए अलग करते हैं और तब यह चिंता करते हैं कि उनके आपस में एक-दूसरे से क्या संबंध हैं। यह इसलिए तय करते हैं क्योंकि हम पेचीदगियों में जीना नहीं चाहते। चकाचौंध करने वाली भिन्नताओं से जब हमारा सामना होता है तो स्थिति पर काबू पाने के लिए हम विशेष में सामान्य की लालसा करते हैं, इस भ्रम में आनंदित होते हुए कि यह अप्रोच दुनिया की आकस्मिकता में खो जाने से हमें बचा लेगी।

हम ऐसी फंतासी को पसंद करते हैं जिसमें

शक्ति से संबंधित मुद्दों को नज़रअंदाज़ किया जा सकता है जिसमें ज्ञान को उन कारणों से महफूज़ रखा जा सकता है जो इसको विकृत करते हैं। सबसे बेहतर तो यह है कि हम इस तरह व्यवहार करते हैं मानो यदि हम उन ज़रूरतों की पूर्ति पूरी तरह न भी कर सकें जो इन माँगों में निहित हैं, तो भी हमें वहाँ तक पहुँचने की कोशिश तो करनी ही चाहिए जहाँ तक हम जा सकते हैं। यही सबसे अच्छा विकल्प है, ऐसा आग्रह करना अथवा इसे निहित मान लेने का अर्थ होगा एक तात्विक दावा करना जिसके लिए आनुभविक प्रमाण जुटा पाना असंभव होगा। अनुभववाद को आनुभविकता के द्वारा औचित्यपूर्ण सिद्ध नहीं किया जा सकता और अनुभववादी की प्रवृत्ति होती है कि वह अपने इस दावे का सहारा लेता है कि 'यह विकल्प-सक्षम है, कारगर है' जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है। इसमें आंशिक रूप से समस्या यह है कि अतिशुद्धता का हमारा आदर्श ही हमारी दृष्टि को धुंधला कर सकता है। अनुभववाद और विज्ञानवाद के मत को विज्ञान की अधिक सरल दृष्टि से प्रतिस्थापित करना शायद बुद्धिमता की ओर पहला कदम होगा। निश्चित ही ऐसा कहने का यह आशय नहीं है कि वैज्ञानिक विधि की समाज विज्ञान में कोई भूमिका ही नहीं है, बल्कि यह कि विशिष्ट कार्य में इस विधि को अन्य तरीकों के रू-ब-रू अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करनी चाहिए, जो अंतर्दृष्टि और समझ प्रस्तुत करती हो, चाहे वह मापन और सांख्यिकी को साथ जोड़ने से हो या उनके बिना। अपने दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए सांख्यिकीवेत्ताओं तथा मापन के प्रणेताओं को विभिन्न और कम आनुभविक निष्ठा वाले समाज वैज्ञानिकों से कई मामलों में बहस करनी होगी, जो सभी संबंधित व्यक्तियों के लिए उपादेय हो सकती है।

व्यंग्य और प्रतिबद्धता

एक अंतिम व्यंग्यात्मक टिप्पणी करना ज़रूरी है। विटगेनस्टाइन ने अपने फिलोसोफिकल इनवेस्टीगेशंस के आमुख के प्रथम मसविदे में लिखा था, 'अभी भी तथ्य यह है कि यूरोपीय सभ्यता के प्रवाह को मैं बिना सहानुभूति के सोचता हूँ और इसके उद्देश्यों पर, यदि कोई हो तो, समझे बिना विचार करता हूँ।' यह बहुत ही संदिग्ध है कि नेहामास जिस दार्शनिक जीवन की इतनी प्रशंसा करते हैं, बहुतों के लिए या कुछ के लिए ही सही, अभी भी संभव हो। ज्ञान की सुकराती कल्पना को आत्म की जिस एकता की ज़रूरत है, क्या इसे पूर्व मान्यता के रूप में स्वीकार करना अभी भी अर्थपूर्ण होगा? उसके लिए ज्ञान मात्र तर्क की विषयवस्तु नहीं थी चाहे वह एक शोध प्रबंध के लिए कितना ही अच्छा क्यों न हो। इसके लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति के बाकी विश्वास, और इसलिए उसका संपूर्ण जीवन उसके तर्कों के अनुरूप हो—जहाँ तक उसके बस में हो। समकालीन समाज की अनेकत्व की विशेषता के कारण यह संदेहास्पद है कि उद्देश्य की ऐसी एकता अभी भी संभव है। यह तर्क दिया जा सकता है। अभी बहुत ज़्यादा ऐसा है जिसे सुलटाना है, या बहुत ज़्यादा

ऐसी पहचानशुदा चीज़ें हैं जो किसी को पसंद आ सकती हैं, या बहुत ज़्यादा ऐसी हैं जो दूसरे व्यक्ति के साथ संबंध में अड़चन पैदा करें, या बहुत ज़्यादा चीज़ें ऐसी हैं जिनके पीछे कोई छिप सकता है, या बहुत ज़्यादा उपलब्धियाँ हैं जो हर चीज़ को अन्य हर किसी चीज़ से आनुपातिक होने की माँग करती हैं।

बिटगेनस्टाइन के उद्धरण के आगे का अंश है, 'इसलिए मैं वास्तव में दुनिया के हर कोने में फैले मित्रों के लिए लिख रहा हूँ।' तो अब हम वास्तव में किसके लिए लिख रहे हैं? स्वाभाविक ही यह 'दूसरों के लिए' नहीं हो सकता क्योंकि मानव समाज केवल विशिष्ट उत्तरों में दिलचस्पी रखता है (सैद्धांतिक और व्यावहारिक)। तब क्या हम उनके लिए लिख रहे हैं जो इस प्रकार सोचते हैं? यदि ऐसा है तो हमारी अप्रोच समाज वैज्ञानिकों से कतई अलग नहीं है जिनकी हमने पहले आलोचना की थी। क्या हम 'तितलियाँ इकट्ठा करने' से ज़्यादा कुछ कर रहे हैं, इसके बावजूद कि हमारी सोच का रुझान इस ओर हो कि हमने एक सुंदर प्रजाति को ढूँढ़ लिया है? क्या यह प्रतिक्रिया समय के रोगग्रस्त होने के खिलाफ है? जो इस अर्थ में निष्क्रिय नहीं है जैसा कि बिटगेनस्टाइन का मंतव्य था जो उन्होंने तत्व विज्ञान पर बात करते हुए रखा था और यदि हम 'द्वंद्व' चाहते हैं, तब हमारे दिमाग में क्या आता है? फूको को भी इस समस्या से जूझना पड़ा था। 'आत्म की देखभाल' की अवधारणा में जिसे इस रूप में परिभाषित किया गया था कि व्यक्ति के विवेक का प्रयोग यह जानने में होता है कि वह कौन है और कैसे सबसे अच्छा इंसान हो सकता है जिसमें साहस अहम भूमिका निभाता है। उनका आग्रह यह जानने का भी रहा कि नगर के लिए सुकरात की क्या उपयोगिता थी, उसके साथियों के लिए उसका क्या महत्त्व था, उसके मित्रों को उससे क्या फ़ायदा था। फूको मानता था कि अव्यक्तिगत ताकतों के अंध प्रचलन से इतिहास निर्देशित होता है। कर्ताओं द्वारा शक्ति का संचालन नहीं किया जाता है, शक्ति ही उन्हें निर्मित करती है; यद्यपि शक्ति का संचार व्यक्तियों द्वारा होता है, यह अधिकांशत: (प्राय:) उनके नियंत्रण में नहीं होती। अनेक प्रकार की सूचनाएँ जिस तरह लोगों का वर्णन करती हैं, उसके लिए भी व्यक्ति होने का, जो कि वह है यही अर्थ है। इसके अतिरिक्त, फूको के अनुसार लगता है कि हर अच्छी चीज़ का बुरा पहलू भी होता है, लेकिन हर बुरी चीज़ सही परिस्थितियों में अच्छे में भी तब्दील हो सकती है। इस तरह विषय गायब नहीं होता; बल्कि उसकी बढ़े हुए आकार की तरह की गई एकता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया जाता है। मतलब यह कि इतिहास में अंतर्निहित मूल वास्तविकता नहीं है, लेकिन यह असल में कोई कल्पना भी नहीं है और जो कर्ता है, वह भी अंतत: न तो स्वतंत्र है और न ही वास्तव में एक कठपुतली। 'आत्म की देखभाल' में उन तकनीकों का उल्लेख है जिनका उद्देश्य व्यक्ति को एक ऐसा इंसान बना देना है जिस पर गर्व किया जा सके। फूको ने कलाकृति के सृजन

को 'आत्म की देखभाल' के मॉडल के रूप में देखा, जिसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता भी है। फूको के लिए निजी और सार्वजनिक, नैतिक और राजनीतिक एक दूसरे में उलझे हुए हैं जैसे ज़िंदगी और काम। अपने को रूपांतरित करके फूको ने दूसरों की ज़िंदगी में महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा किए और अपने विचारों के अनुरूप जीवन बिताते हुए, वह उन लोगों के प्रति गहन प्रेम अभिव्यक्त कर पाया जो उसके साथ गतिविधियों में शामिल नहीं थे और व्यावहारिक दृष्टि से हाशिए पर थे। माना कि उस वास्तविकता को, जिसमें व्यक्ति जीता है, अवधारणात्मक रूप देने के गंभीर प्रयास में सिद्धांत की केंद्रीय भूमिका होती है। पर इस प्रकार का सिद्धांत गहनतर सुकराती व्यंग्य को एक कदम और आगे ले जाता है। यह व्यवहार और सिद्धांत के पारंपरिक द्वि-विभाजन के पार जाकर वास्तविकता को परिवर्तित करने का प्रयास करता है।

जो संकीर्ण और कड़वा सबक सीखने की ज़रूरत है, वह यह कि उस समय जब अधिकांश लोग आश्चर्यचकित नहीं होना चाहते हों, तिकड़मी तरीकों से प्रभावपूर्ण होना चाहते हों और नियंत्रित करना चाहते हों—उन सब चीज़ों से बचने के लिए जो हमें पसंद नहीं हैं, संतोष की स्थिति को आगे के लिए न टालना पड़े इसलिए, (एक पॉप सम्राज्ञी के कथन का अनुसरण करते हुए, 'मुझे यह सबकुछ चाहिए और अभी चाहिए'), ऐसे समय में सिर्फ़ शिक्षा ही सिखा सकती है कि शक्ति पर आधारित संबंधों से और आमतौर पर शक्ति से कैसे निबटें। लेकिन शिक्षा भी सुझा सकती है थोप नहीं सकती। दूसरे शब्दों में, विशिष्ट प्रतिबद्धताओं के लिए अपील कर सकती है। विडंबना है कि यह अंतर्दृष्टि भी सैद्धांतिक ही है जिसके बारे में हम विश्वस्त नहीं हो सकते लेकिन विरोधाभास यह है कि यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हम अधिक विश्वस्त होने से बच नहीं सकते। यह तत्वविज्ञान या तार्किक प्रकृति की है, ऐसा कहा जा सकता है। और यह आग्रह याद दिलाता है कि हमें सीढ़ी को सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद फेंक देना चाहिए। शायद हमारे पास और अच्छी प्रैक्टिस का अभाव है और शायद परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि इस पर काबू नहीं पाया जा सकता। यह स्थिति फिलोसोफिकल इनवेस्टीगेशंस में दिए बिटगेनस्टाइन के मत से मेल खाती है कि हमें कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं करना चाहिए। शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष के समानांतर, जिसकी विशेषत: दीक्षा भी उतनी ही है जितना कि खुलापन, हमें सिद्धांत के अभ्यास की ज़रूरत है—और सामान्य रूप में शैक्षणिक की संलग्नता की जो 'प्रतिबद्धता से आवेशित' हो।

शिक्षा के दार्शनिकों का दायरा यदि और बड़ा करें तो सभी को जो शैक्षणिक सिद्धांत या शैक्षणिक शोध की प्रकृति से संबंधित बहस में संलग्न हैं, इसका पूरी तरह अहसास होना चाहिए। शोध (आनुभविक) का उपहास करना बहुत आसान है और हम मार्क्स के इस कथन की सच्चाई से कि हम अपने पर सबसे पहले संपूर्ण सामाजिक परिवेश की प्रकृति के अनुकूल, हितों द्वारा संचालित किए जाते हैं, से सहमत न हों।

इसके बावजूद जैसा कि हममें से कुछ अपने व्यावहारिक अनुभवों से पहले से ही जानते हैं, हमें शैक्षिक नीति और अभ्यास के विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता है उन सुझावों के साथ कि स्थितियाँ अन्यथा कैसे बेहतर हो सकती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में और सदैव बढ़ती हुई सीमा में अनुप्रयुक्त विज्ञान के विचार को जिसमें शैक्षणिक हस्तक्षेप आनुभविक 'रहस्योद्घाटनों' का परिणाम होता है, तिलांजलि दी जा रही है। ऐसा विकास के सिद्धांत के पक्ष में किया जा रहा है, जो स्वयं हस्तक्षेप में से ही विकसित हो सकता है। इसी में विकास की एक दिशा भी देखने को मिलती है जिसमें शिक्षाशास्त्रीय शोध की नवाचारात्मक भूमिका पर ज़ोर दिया जा सकता है। इस प्रकार 'काल्पनिक' परिप्रेक्ष्य एक नयी मान्यता प्राप्त कर लेता है; आनुभविक और दार्शनिक शोध, मात्रात्मक और गुणात्मक शोध का संयोजन हम पर फिर हावी हो जाता है।

हमारी वैश्वीकृत दुनिया में प्रकल्पित तटस्थता की सुरक्षा का प्रयास शिक्षा को खतरे में डालता है। हमें शिक्षा की ऐसी अवधारणा की ज़रूरत है जो आकस्मिकता और खतरे से बचाव को असंभव मानते हुए उद्देश्यपूर्ण और फलदायक हो सके। अब सुस्पष्ट नैतिक (शायद राजनीतिक भी) प्रतिबद्धताओं का समय आ गया लगता है और इसलिए नीत्शे के विचार के नवोन्मेष का भी कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य इस पर निर्भर करता है कि इसने संपूर्ण को, जिसका वह हिस्सा है, क्या योगदान दिया। एक सामान्य निष्कर्ष इस सबका यह निकाला जा सकता है कि हमें स्पष्टीकरण और शैक्षणिक अभ्यास में विशिष्ट विकास के विशिष्ट मॉडलों की आलोचना करते रहना पड़ेगा। सुझाव यह भी दिया जा सकता है कि हमें नयी संभावित नुकसानदायक गतिविधियों के प्रति और नए बाहरी और आंतरिक शक्ति केंद्रित संबंधों के प्रति सावधान रहना पड़ेगा। मात्र इसकी पैरवी करना काफ़ी नहीं होगा कि 'हम हर समय आलोचक बने रहें।' बल्कि हमें विशिष्ट सुझावों के साथ उपस्थित होना होगा और इस प्रकार अपने को शैक्षणिक शोध और अभ्यास में सच्चे भागीदार के रूप में प्रस्तुत करना होगा और इसलिए हम भी आलोचना के पात्र होंगे। यही और केवल इसी प्रकार के राजनीतिक शोध वास्तव में प्रत्यक्षवाद और नकारवाद के परे होंगे। यही और केवल यही अप्रोच अधिकाधिक रूप में की जा रही बेकार और निष्फल शोध के खेल से मुक्त कर पाएगी। ऐसे जोखिम भरे शोध में इन सबके लिए स्थान होगा– पूर्व में जो भी मूल्यवान था; जो वर्तमान में करने योग्य है और वे चीज़ें जिन्हें भविष्य में छोड़ा नहीं जाना चाहिए।

–अनुवादक
सुरेन्द्र कुशवाहा

मध्य प्रदेश प्राइमरी और मिडिल स्तर पर मूल्यांकन के नए मानदण्ड : शैक्षिक, सह-शैक्षिक और व्यक्तिगत व्यवहार

शशि मित्तल*

भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है। हमारी परीक्षा प्रणाली के दुष्प्रभाव सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सार्थक और बच्चों के लिए आनंददायी बनाने के प्रयासों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। एक लंबे समय से शैक्षिक मूल्यांकन प्रक्रिया में बदलाव लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 ने भी वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया में संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक बदलाव लाने की सिफारिश करते हुए महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ दी हैं। प्रस्तुत लेख में मध्यप्रदेश में प्राइमरी व मिडिल स्तर पर विद्यार्थियों के मूल्यांकन में राज्य सरकार द्वारा लागू किए गए कुछ परिवर्तनों की चर्चा की गई है। जिनके अनुसार अब राज्य में विद्यार्थी का सह-शैक्षिक क्षेत्रों में एतत् एवं उनके व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों का भी सतत् मूल्यांकन किया जाएगा जो अंकों के बजाय ग्रेड पद्धति से होगा।

अधिकांश शैक्षिक बोर्डों में अभी तक केवल विषयगत पाठ्यक्रम का मूल्यांकन होता रहा है। यह मूल्यांकन त्रैमासिक, छमाही और सलाना लिखित परीक्षाओं पर आधारित रहता था। इस प्रकार के मूल्यांकन में प्राय: रटी हुई सामग्री को परीक्षा भवन में कॉपी पर उलट देना मात्र था। इस संबंध में बहुत कुछ कहा जा चुका है, उसको दोहराना व्यर्थ है।

सत्र 2011-12 से मध्यप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग ने कुछ मौलिक परिवर्तन मूल्यांकन को लेकर किए हैं।

एक तो विषयगत पाठ्यक्रम में लिखित

* *शैक्षणिक सलाहकार,* 102, पुराना हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, मुरैना, मध्यप्रदेश-4760001

परीक्षा 90 अंकों की है, 10 अंक मौखिक परीक्षा के हैं ताकि बच्चे के उच्चारण, अभिव्यक्ति, विचार, प्रगटीकरण आदि का मूल्यांकन किया जा सके। विद्यार्थियों के बीच परस्पर प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए अब अंकों के स्थान पर ग्रेड दिया जाएगा। अब कोई बच्चा यह नहीं कह सकेगा कि वह एक या दो अंक के कारण प्रथम आने से रह गया। यह ग्रेडिंग वर्ग (Range) में होगी। अत: एक-दो अंकों का हेर-फेर किसी विद्यार्थी को अवसाद में नहीं डालेगा।

परंतु इसके अतिरिक्त प्राइमरी और मिडिल स्तर पर जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है, वह है विद्यार्थी का सह-शैक्षिक क्षेत्रों में एतत् मूल्यांकन। इसके साथ ही विद्यार्थी के व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों का भी सतत् मूल्यांकन होगा और विद्यार्थी के अंक चिह्नों में यह दर्ज होगा। यह मूल्यांकन भी ग्रेडिंग पद्धति से होगा।

सह-शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन बिंदु इस प्रकार हैं -

	सह-शैक्षिक क्षेत्र	मूल्यांकन बिंदु	गतिविधि
1.	साहित्यिक	1. सहभागिता 2. विधानुरूप प्रस्तुति 3. आत्मविश्वास 4. मौलिकता	गीत/कहानी/अंताक्षरी भाषण/वाद-विवाद निबंध/पत्र/कविता/रिपोर्ट-लेखन पुस्तकालय का उपयोग
2.	सांस्कृतिक	1. सहभागिता 2. विधानुरूप प्रस्तुति 3. आत्मविश्वास 4. मौलिकता	गायन/वादन नृत्य/लोकनृत्य अभिनय-एकल/सामूहिक
3.	वैज्ञानिक	1. सहभागिता 2. जिज्ञासा/रुचि 3. क्रमबद्धता 4. वर्गीकरण	आस-पास की खोज परिवेश-परंपरा-प्रकृति-दर्शनीय स्थल बागवानी कंप्यूटर शिक्षा
4.	सृजनात्मक	1. सहभागिता 2. रंग संयोजन 3. कल्पनाशीलता/रूपरेखा 4. मौलिकता	कागज, मिट्टी आदि से विभिन्न आकृतियाँ व खिलौने बनाना ड्रॉइंग/पेंटिंग मेंहदी, रंगोली सिलाई-कढ़ाई-बुनाई

5.	खेलकूद योग, स्काउट/रेडक्रॉस	1. सहभागिता 2. उत्साह/टीम/खेल भावना 3. स्टेमिना 4. कुशलता	आउटडोर- कबड्डी, खो-खो, दौड़, लम्बी/ऊंची कूद, हॉकी, फुटबाल, क्रिकेट, बैंडमिंटन व स्थानीय खेल इनडोर- कैरम, लूडो, शतरंज व स्थानीय खेल कब-बुलबुल/स्काउट/गाइड रेडक्रॉस

ग्रेड देने का तरीका निम्न प्रकार से होता है:

उत्कृष्ट	ए ग्रेड	चार मूल्यांकन बिंदु पाये जाने पर
उत्तम	बी ग्रेड	तीन मूल्यांकन बिंदु पाये जाने पर
अच्छा	सी ग्रेड	दो मूल्यांकन बिंदु पाये जाने पर
सामान्य	डी ग्रेड	एक मूल्यांकन बिंदु पाये जाने पर
सुधार योग्य	ई ग्रेड	सहभागिता में नकारात्मकता

विद्यार्थी को प्रत्येक सह-शैक्षिक क्षेत्र की कम-से-कम एक गतिविधि में भाग लेना आवश्यक होगा। मूल्यांकन के लिए अवलोकन चेक लिस्ट और दस्तावेजों का सहारा लिया जा सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी का अभिलेख मासिक कालखण्ड में सुरक्षित रखा जाना आवश्यक है।

इसी प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी का मासिक स्तर पर व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों के मूल्यांकन का रिकॉर्ड रखना भी आवश्यक है। व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों के मूल्यांकन बिंदु इस प्रकार हैं–

	व्यक्तिगत व सामाजिक गुण	**गतिविधि**
1.	नियमितता	प्रतिदिन शाला में उपस्थित होना, सभी कालखण्डों में उपस्थित रहना।
2.	समयबद्धता	समय पर शाला आना-जाना। शाला-कार्य/गृहकार्य समय पर पूर्ण करना।
3.	स्वच्छता	ड्रेस, नाखून, दाँत, आँख, नाक, कान स्वच्छ रखना।
4.	अनुशासन/कर्तव्यनिष्ठा	शिक्षक द्वारा सौंपे गए कार्य पूर्ण करना। शाला/कक्षा व्यवस्थित व स्वच्छ रखना। जूते-चप्पल व अन्य सामग्री निर्धारित स्थान पर रखना। दूसरों से लड़ना-झगड़ना नहीं, शाला के नियमों का पालन।
5.	सहयोग की भावना	शिक्षक के प्रति सहयोग। सहपाठियों के प्रति सहयोग। अन्य के प्रति (माता-पिता, बड़े बुजुर्ग, समाज आदि) सहयोग।

6.	पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता	पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं के प्रति संवेदनशीलता। जल संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता।
7.	नेतृत्व की क्षमता	खेल-कूद, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि गतिविधियों के दौरान नेतृत्व करना। कक्षा मॉनीटर, टीम लीडर, कैप्टन की भूमिका निर्वहन।
8.	सत्यवादिता	शाला/कक्षा के दौरान सदैव सच बोलना।
9.	ईमानदारी	ईमानदारी का व्यवहार प्रदर्शित करना। गुमी हुई वस्तु प्राप्त होने पर लौटा देना।
10.	अभिवृत्ति	शिक्षकों व बड़ों के प्रति सम्मान। सहपाठियों व अन्य बच्चों के प्रति सम्मान। अध्ययन के प्रति रुचि। शाला व सार्वजनिक संपत्ति के प्रति सुरक्षा भावना।

इन उपरोक्त बिंदुओं के मूल्यांकन के लिए अवलोकन उपस्थिति पंजिका, वाचन, दस्तावेज, निरीक्षण आदि का सहारा लिया जा सकता है। ग्रेड देने का तरीका निम्न प्रकार से होगा:

उत्कृष्ट	ए ग्रेड	पूर्ण अपेक्षित व्यवहार
उत्तम	बी ग्रेड	संतोषजनक व्यवहार
अच्छा	सी ग्रेड	औसत अपेक्षित व्यवहार
सामान्य	डी ग्रेड	आंशिक अपेक्षित व्यवहार
सुधार योग्य	ई ग्रेड	अनापेक्षित व्यवहार

वास्तव में आज प्रचलित मूल्यांकन पद्धति से बच्चों में अवसाद, तनाव व धक्का देकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति को बल मिलता है। गहराई से सोचें तो इससे सामाजिक समरसता बिगड़ती है और विद्यार्थी में मानवीय गुणों का स्रोत सूख जाता है। दया, करुणा, सद्भाव, परस्पर बाँटकर किसी चीज़ का उपयोग, सहृदयता, परोपकार के स्थान पर स्पर्धा, ईर्ष्या, प्रतिद्वंद्विता की भावना बढ़ जाती है। किसी भी स्वस्थ समाज के ये लक्षण नहीं हैं। नये मूल्यांकन बिंदुओं से विद्यार्थी के वैयक्तिक गुणों के लिए उभार के अवसर मिलेंगे। साथ ही सापेक्ष मूल्यांकन के स्थान पर निरपेक्ष मूल्यांकन, अर्थात् विद्यार्थी के स्वयं के पिछले मूल्यांकन से उसके आगे का मूल्यांकन, ऐसी स्थिति में प्रतिस्पर्धा पर रोक लगेगी।

आशा है, मध्यप्रदेश शासन द्वारा इस मूल्यांकन पद्धति को अन्य राज्य और परीक्षा बोर्ड भी अपनाएँगे।

भूमण्डलीकरण एवं शिक्षक सशक्तीकरण

संजीव शुक्ला*

मानव सभ्यता के तीव्र विकास के साथ-साथ वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न देशों को परस्पर निर्भर बना दिया है। वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) स्वयं की अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति, समुदाय आदि को विश्व समुदाय के लिए खोलना अथवा विश्व के अन्य देशों के साथ जोड़ना है। वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संसार की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं व समाज का समन्वय किया जाता है जिससे वस्तुओं व सेवाओं, सूचना प्रौद्योगिकी, पूँजी निवेश, शिक्षा, सांस्कृतिक आदान-प्रदान आदि का इनके बीच आपसी प्रवाह हो सके। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विकास एवं प्रतिस्पर्धा साथ-साथ चलती है। आज हम देखते हैं कि शिक्षा का भी वैश्वीकरण हुआ है। आज हमारे देश को तीव्र गतिशील एवं परिवर्तनशील भौतिक, आर्थिक व सामाजिक पर्यावरण के साथ प्रभावी सामंजस्य बनाना आवश्यक हो गया है। देश की भावी युवा पीढ़ी को वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना करने व उसके योग्य बनने हेतु सामाजिक परिवर्तन के एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका एवं महत्त्व पहले से अधिक बढ़ गया है।

वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा की नयी आवश्यकताओं को जानने हेतु यहाँ कतिपय विषयों का बिंदुवार वर्णन करना अत्यधिक उचित होगा–

भूमण्डलीकरण ने शिक्षा में अतिशय उपभोक्तावाद, व्यवसायवाद तथा सांस्कृतिक अध्यारोपण की नयी समस्या प्रस्तुत कर दी है। इलेक्ट्रॉनिक प्रिंट तथा अन्य माध्यमों ने आज की कक्षाओं के बच्चों में विभिन्न संस्कृतियों के घालमेल, तरह-तरह के विज्ञापनों से उपजी नकारात्मकता, पश्चिमी सभ्यता एवं पश्चिमी जीवन शैली को अपनाने की बढ़ती प्रवृत्ति आदि अनेक कारणों से उनकी मूल्य प्रणाली में भारी बदलाव ला दिया है। इसलिए आज की कक्षाओं में प्रभावकारी अध्यापन हेतु शिक्षकों के सेवापूर्व व सेवाकालीन प्रशिक्षणों की विषयवस्तु व स्वरूप

* *प्रवक्ता* (बी.एड. विभाग), श्री गाँधी महाविद्यालय, सिंघौली, सीतापुर, उत्तर प्रदेश

में दोनों को समुन्नत बनाकर उन्हें प्रशिक्षित करना होगा। आज के शिक्षक को विद्यार्थियों को इस योग्य बनाने की आवश्यकता है कि वे विभिन्न संस्कृतियों को समझना-परखना सीखें, वास्तविकता व अफवाहों को समझें और उनमें से अपनाने लायक गुणों को ही ग्रहण करें। यह तभी होगा जब आज का शिक्षक स्वयं को सशक्त करे।

विज्ञान एवं टैक्नोलॉजी के अत्यधिक समुन्नत साधनों ने व्यक्तिगत जीवन तथा व्यावसायिक जीवन दोनों को जटिल बना दिया है। कक्षाध्यापन में कंप्यूटर, टेपरिकॉर्डर एवं अन्य इलेक्ट्रॉनिक साधनों का उपयोग करने, हार्डवेयर, सॉफ्ट्वेयर को अपनाने जैसे दायित्व बढ़ गए हैं। इससे शिक्षकों में नए कौशल लाने की आवश्यकता बढ़ गई है। उन्हें बनाने की विधियाँ खोजना है। इसलिए उनके प्रशिक्षण स्तर में सुधार लाकर उन्हें अधिक सशक्त बनाना होगा।

भूमण्डलीकरण के प्रसंग में औद्योगिकीकरण भी अधिक बढ़ गया है जिससे रोजगार व बेहतर जीवन की खोज में गाँवों से शहरों में आकर बसने की प्रवृत्ति बढ़ गई है और नगरीकरण की समस्या सामने आ गई है। इससे हमारी संयुक्त परिवार की संस्कृति टूट रही है और सूक्ष्म परिवार का नया विचार आ गया है। सूक्ष्म परिवारों में भी प्रगाढ़ संबंधों का अभाव देखा जा रहा है और सामाजिक विघटन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। अत्यंत शहरीकरण ने जहाँ एक ओर सह-अस्तित्व और पारस्परिक सहिष्णुता बढ़ा दी है, वहीं दूसरी ओर पृथक् पहचान बनाए रखने, पर्यावरणीय समस्या, सुरक्षा व साधनों की कमी आदि अनेक समस्याएँ भी उससे बढ़ी हैं। देश में आंतरिक एवं बाह्य माइग्रेशन भी हो रहे हैं। इससे शालाओं के शैक्षिक वातावरण में बहु-संस्कृतिवाद एवं अंत:संस्कृतिवाद को समझने और परखने के अवसर बढ़ गए हैं। इसलिए छात्रों का प्रस्तुत विभिन्न संस्कृतियों, जीवन-शैलियों में पहचान कर ग्राह्य एवं अग्राह्य में भेद करना होगा। छात्रों में इस योग्यता को विकसित करने हेतु अध्यापन कला (pedagogy) में परिमार्जन करने की आवश्यकता है। यह तभी हो सकेगा जब शिक्षकों को नयी अध्यापन कला में पारंगत कर उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सशक्त किया जाए।

आज शालेय शिक्षा, महाविद्यालयीन शिक्षा तथा विश्वविद्यालयीन शिक्षा प्रत्येक स्तर पर विषयवस्तु, अध्यापन आवश्यकताएँ तथा अध्यापकीय दृष्टिकोण सभी बदल गए हैं। ऊर्जा संरक्षण, पर्यावरणीय प्रदूषण एवं बचाव, जनसंख्या शिक्षा, रोग मुक्ति व रोग नियंत्रण के उपाय, सकारात्मक मूल्यों का विकास, मानवाधिकार का समादर, आदि नए विषयों का समावेश पाठ्यक्रम में हो गया है। पाठ्यक्रमों में आए इस परिवर्तन को प्रभावकारी ढंग से सामना करने हेतु शिक्षकों की दक्षता में अभिवृद्धि करनी होगी। इसके लिए उन्हें सशक्त बनाना होगा।

आज वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा और समाज दोनों के क्षेत्र में परिवर्तन आ गया है। नीति-निर्देशक सिद्धांतों में भी भारी बदलाव हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1996) के अध्यक्ष जे. डेलर्स व सहयोगियों के अभिमत में

शिक्षा के चार स्तंभ 'ज्ञान के लिए शिक्षा, कार्य के लिए शिक्षा, सह-अस्तित्व की शिक्षा तथा स्व-अस्तित्व की शिक्षा हैं।' इन चारों स्तंभों को पूर्ण करने योग्य बनने के लिए शिक्षा प्रणाली में आमूल-चूल परिमार्जन करना होगा। छात्रों को स्वाध्याय और विवेकशील चिंतक बनाने हेतु प्रेरित करना होगा और शिक्षक को स्वयं विवेकशील व शोधार्थी बनने की दक्षता प्राप्त करनी होगी। इस प्रसंग में शिक्षकों का विकास कर उन्हें अधिक सशक्त बनाना होगा।

ऑडियो और वीडियो टेक्नोलॉजी में आई क्रांति से अध्ययन, अध्यापन तथा प्रशिक्षण तकनीकों में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया है। अध्यापन सहायक सामग्री अब अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। टेलीकांफ्रेंसिंग, दूरवर्ती शिक्षा, कंप्यूटर आदि के बढ़ते प्रयोग ने अब शिक्षा अध्ययन-अध्यापन को अन्य व्यवसायों जैसा बना दिया है। एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली द्वारा Classroom 2000 के प्रयोग ने जिसमें कर्नाटक एवं मध्यप्रदेश के शिक्षकों को टेलीकांफ्रेंसिंग से प्रशिक्षण देकर, प्रशिक्षण की परंपरागत Cascade प्रणाली के स्थान पर एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत कर दिया है और Pedagogy के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन का उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रशिक्षण की इन नयी तकनीकों से आज के शिक्षक को भली-भांति परिचित होना होगा और उनके प्रयोग में दक्षता पानी होगी तभी शिक्षक व्यवसायी सुदक्षता प्राप्त कर सकेगा।

शिक्षकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण में कतिपय विशेष कार्यक्रमों के समावेश हेतु सुझाव दिए गए हैं। यशपाल समिति (1993) का सुझाव अत्यंत उपयोगी जान पड़ता है कि नर्सरी, पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक शिक्षकों के लिए भी विशेष बी.एड. प्रशिक्षण आयोजित किए जाएँ। बी.एड., एम.एड. प्रशिक्षणों की अवधि भी बढ़ाई जानी चाहिए। पाठ्यक्रम संचालित करने के भी सुझाव हैं।

इस प्रकार 21वीं सदी के वैश्वीकरण ने सभी आयामों यथा विषय-वस्तु, अध्यापन विधि, अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया, नवाचारी पेडागॉजी, अध्ययन-अध्यापन सामग्री, कक्षाध्यापन में हार्डवेयर-सॉफ्टवेयर का प्रयोग, प्रशिक्षण विधियाँ, व्यावसायिक रूप से राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सुदक्ष शिक्षकों की उपलब्धि संबंधी आवश्यकताएँ और चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं और इन चुनौतियों का सामना करने हेतु शिक्षकों के सशक्तीकरण को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है।

उपरोक्त वर्णनात्मक विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों के सशक्तीकरण के निम्नांकित प्रसंग उत्पन्न हुए हैं:

- बढ़ते औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप अप्रवासन व शहरीकरण से उत्पन्न चुनौतियों और उनके निराकरण हेतु रोजगारपरक व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने का कौशल विकसित करना।
- शैक्षिक टेक्नोलॉजी में आई क्रांति के फलस्वरूप कक्षाध्यापन में हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर व अन्य प्रभावकारी टेक्नोलॉजी

को उपयोग करने का कौशल विकसित करना, प्रशिक्षण की गुणवत्ता को स्वीकारना और तद्नुरूप स्वयं को अनुकूलित करना ।

- स्व-अस्तित्व और सह-अस्तित्व के लिए अधिगम के नवाचारी विचारों का पोषण करना और जीवन के लिए शिक्षा के स्थान पर जीवनपर्यंत शिक्षा को प्राथमिकता देना।
- प्रशिक्षण की नयी तकनीकों टेलीकांफ्रेंसिंग, दूरवर्ती शिक्षा और अन्य उपागमों के प्रयोग में स्वयं को पारंगत बनाना।
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रसार की दृष्टि से एक देश से दूसरे देश में शैक्षिक संस्थाएँ व शैक्षिक परिसर स्थापित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्वयं को योग्य बनाने के लिए वैश्विक स्तर की शिक्षा ग्रहण कर स्वयं को समुन्नत करना ताकि विश्व स्तर की ऐसी माँग की पूर्ति की जा सके।
- यूनेस्को घोषणा के अनुसार मानवाधिकार, प्रजातंत्र, जीवनोपयोगी विकास व क्रांति का मूल स्तंभ शिक्षा होती है। इन मूल्यों की स्थापना में सहायक बनने के योग्य स्वयं को भाषायी कौशल तथा टेक्नोलॉजी कौशल में पारंगत करना।

अत: वर्तमान समय में यदि शिक्षक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम रूप में प्रदर्शित करना चाहता है तो स्वयं के सशक्तीकरण के लिए उसे अपने सतत् व्यावसायिक विकास के साथ-साथ संचार व संप्रेषण तकनीक का पूर्ण ज्ञान होना तथा भारतीय संस्कृति के मूल्यों के अनुरूप शिक्षा का उचित संतुलन एवं सम्मिश्रण करना होगा तभी वह अपने शिक्षार्थियों के साथ न्याय कर सकेगा। इस दिशा में ठोस एवं सार्थक प्रयास अपेक्षित है।

संदर्भ

हुसैन, नौशाद, 2004, 'परम्परा से हटकर वेब आधारित शिक्षा', *भारतीय आधुनिक शिक्षा*, वर्ष-23, अंक-2

कुमार, हर्ष, 2004, 'शिक्षक सशक्तीकरण में तकनीकी ज्ञान की अनिवार्यता', *प्राइमरी शिक्षक*, वर्ष-29, अंक-4

शर्मा, मंजू, 2003, 'अध्यापक शिक्षा प्रणाली में सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग', *एजुकेशनल हेराल्ड*, वोल. 34, अप्रैल-जून, 2003.

लहरी, जी.के., 2004 'पीडोगॉजिकल रिफॉर्मस थ्रू ट्रांजेक्शनल स्ट्रेटजीज़....' *जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन*, फरवरी, 2004.

दुबे., जे.आर. एवं सिंह, कर्ण, 2008-09, *भौतिक विज्ञान शिक्षण*, गोबिंद प्रकाशन, लखीमपुर खीरी, पृ. 22 एवं 23.

वर्तमान संदर्भ में संस्कृत भाषा की उपादेयता

सुनीता कुमारी नागर*

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के गौरवपूर्ण इतिहास का साक्ष्य हमें संस्कृत भाषा से प्राप्त होता है। चाहे वो यूरोपियन रहे हों या मुस्लिम शासक सबने इस भाषा को बहुत महत्त्व दिया है। पिछली तीन सदियों से संस्कृत साहित्य की ज्ञान संपदा का दोहन विदेशी करते आ रहे हैं। परंतु हमारे देश में इस भाषा के प्रचार-प्रसार को बहुत कम महत्त्व दिया जा रहा है जो बहुत ही दुःखद है। आज के युवा भी इसमें अधिक रुचि नहीं दिखा रहे हैं क्योंकि यह रोज़गारपरक नहीं है। आवश्यकता है इस भाषा को रोज़गारपरक बनाने की जिससे अधिक से अधिक युवा इसमें रुचि लें और इसके लिए कार्य करें। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसी ही चर्चा की गई है।

विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताएँ कालकवलित हो गईं, किंतु भारतीय संस्कृति आज भी विश्व के प्रांगण में अपना सम्मानपूर्ण तथा गौरवमय स्थान बनाए हुए है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के उद्भव एवं विकास को संस्कृत भाषा का स्वर प्राप्त हुआ है। प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों, मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों, बौद्धिक पूर्वाग्रहों की अभिव्यक्ति संस्कृत के माध्यम से हुई है, इसलिए बार-बार उद्घोष किया जाता रहा है- *'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'।*[1] महात्मा गाँधी ने संस्कृत भाषा की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि संस्कृत भाषा के बिना कोई भी भारतीय एक सच्चा ज्ञानी नहीं हो सकता। विदेशी विद्वान मैक्समूलर ने भी संस्कृत को विश्व की महानतम भाषा माना है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत सारी शास्त्रीय भाषाओं के प्रति हमेशा से ही उदार रही है जिसमें तमिल, लैटिन, अरबी और संस्कृत शामिल हैं। लेकिन संस्कृत को ज़्यादा गंभीरता से लेने की ज़रूरत है, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू (1949) ने कहा था कि– *संस्कृत भाषा और साहित्य*

* *शोधछात्रा*, सांख्ययोग विभाग, दर्शन संकाय, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली-110016

1. *महाभारत*, शांति पर्व- श्लोक सं. 51

भारत का सबसे बड़ा खज़ाना है और वे यह भी विश्वास करते थे कि भारत की बौद्धिकता तब तक बनी रहेगी जब तक ये हमारे भारतीय लोगों के जीवन को प्रभावित करते रहेंगे।[2]

संस्कृत भाषा का साहित्यिक तथा प्राच्यविद्यापरक इतिहास मात्र एकवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि इसमें मानव-सभ्यता के स्वस्थ मूल्यों की बहु-आयामी दिशाएँ मुखरित हुई हैं, जो भारत को 'जगद्गुरु' बनाने का गौरव प्रदान करती हैं। राष्ट्रीय एकता को एक सूत्र में पिरोने तथा भारत की सामाजिक संस्कृति को इंद्रधनुषी रंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली एक दायित्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह संस्कृत भाषा और उसका साहित्य प्राचीन काल से करता आया है। संस्कृत भारतवर्ष की राष्ट्रीय अखण्डता और 'अनेकता में एकता' का संदेश देती आई है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैण्ड तक भारत में तीन सौ से अधिक भाषाएँ या बोलियाँ बोली जाती हैं। संस्कृत इन सभी भाषाओं और बोलियों की माँ है और उन्हें एकता के सूत्र में बाँधती है। संस्कृत की राष्ट्रीय चेतना के परिणामस्वरूप ही भारतवर्ष एक समृद्ध साँस्कृतिक राष्ट्र के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना पाया है।

संस्कृत भाषा ने देश की सभी विचार परंपराओं और साँस्कृतिक विरासतों का प्रतिनिधित्व किया है। चाहे वेदवादी रहे हों या वेदविरोधी, आस्तिक हों या नास्तिक, जैन हों या बौद्ध, शैव हों या वैष्णव, अध्यात्मवादी हों या लोकायत्तिक, मुस्लिम हों या यूरोपियन सभी ने संस्कृत-साहित्य के महासमुद्र में अपनी वाग्धारा का अर्घ्य समर्पित किया है तथा ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में यह गवाही भी दी है कि संस्कृत भाषा एक संप्रदाय विशेष अथवा प्रांत विशेष की भाषा नहीं है। भारत के कोने-कोने में संस्कृत ने राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक भ्रातृत्व संवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया है तथा संप्रदायवाद एवं प्रांतवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रीय प्रज्ञा के संग्रहण और संवर्धन के स्वर्णिम अवसर जुटाए हैं। ये ही कारण हैं कि धर्मवादी और अर्थवादी तथा चेतनावादी सभी विचार परंपराओं के ऐतिहासिक तट संस्कृत साहित्य में निर्मित हुए हैं। किंतु आज हम किन्हीं राजनीतिक और आर्थिक संकीर्णताओं से अभिशप्त होकर पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की ओर लालायित हैं, संस्कृत साहित्य की ओर हमने उपेक्षा की दृष्टि अपना ली है।

ज्ञान-विज्ञान के संवर्धन का चाहे राष्ट्रीय संदर्भ हो या फिर अंतर्राष्ट्रीय, संस्कृत विद्या के अक्षय भण्डार का अपलाप नहीं किया जा सकता है। भारतीय तत्व-चिंतकों ने ही सर्वप्रथम सत्यानुसंधान की वैज्ञानिक प्रक्रिया का आविष्कार करते हुए यह उद्घाटित किया है कि *'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'*[3] अर्थात् भौतिकवादी चमक-दमक से सत्य को

2. नेहरू, जे., 'फॉर्म दी फंक्शन ऑफ लैंग्वेज', नेशनल हेराल्ड, 13 फरवरी, 1949, कोटेड इन-गोपाल, एस. एण्ड आयंगर, ए. 2003(एडीटेड), *दि एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ जे. नेहरू*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड

3. *ईशावास्योपनिषद्*, मंत्र सं.-18

ढाँप दिया जाता है। इसलिए सत्यानुसंधान के शोधार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह *'वादे वादे जाएते तत्वबोध'*[4] की मार्ग सरणी का पथिक बनकर आधुनिक मानव के लिए तुलनात्मक ज्ञान-विज्ञान का द्वार खोले, परंतु इस मार्ग में उसे सर्वप्रथम प्राचीन भारतीय वाङ्मय के रम्य तपोवनों से गुज़रना होगा और उसके बाद ही वह आधुनिक विश्वविद्यालयीय ज्ञान-विज्ञान का वास्तविक मूल्यांकन कर सकता है। आधुनिक मानव के लिए संस्कृत विद्या की अनिवार्यता इसलिए भी रेखांकित हो जाती है, ताकि वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के स्रोतों को पकड़ सके और यह जान सके कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान कितना प्रगतिशील है। विदेशों में इस अमूल्य ज्ञान-संपदा का व्यापक स्तर पर दोहन कार्य पिछली तीन सदियों से निरंतर प्रगति पर है, किंतु भारतवर्ष में इस दिशा में गंभीरता से सोचना प्रारंभ नहीं हुआ है। जिसके फलस्वरूप संबंधित विचारकों द्वारा भारतीय विद्या और उसके प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को अवमानित किया जाता है। इस मानसिकता का एक मुख्य कारण है राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति उदासीनता तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को उत्कृष्ट मानने का पूर्वाग्रह। ब्रिटेन, रूस, अमेरिका, फ्राँस, जर्मनी आदि देशों में संस्कृत-विद्या के अध्ययन को जो प्रोत्साहन दिया जा रहा है उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ के बुद्धिजीवियों ने संस्कृत की प्रासंगिकता को आधुनिक संदर्भ में भी चरितार्थ किया है। सोवियत विद्वान गोरबोवस्की (रशियन क्युनिशयन एजेंसी से संबंधित) महाभारत में ब्रहमास्त्र प्रयोग के अवतरणों से प्राचीन भारत में 'एटम बम' के अस्तित्व होने की संभावनाओं का पता लगा रहे हैं। संस्कृत विद्याओं के वैज्ञानिक महत्त्व के कारण इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि में वैदिक गणित को शिक्षा के पाठ्यक्रम का अंग ही बना दिया गया है।[5] लंदन में 10+2 प्रणाली के अंतर्गत गणित के आधुनिक फॉर्मूलों को समझने के लिए प्राचीन भारतीय गणितशास्त्र को एक उपयोगी प्रणाली के रूप में मान्यता मिल चुकी है।[6] संस्कृत अध्ययन से जुड़ी इन अंतर्राष्ट्रीय उपलब्धियों से यह भली-भांति सिद्ध हो जाता है कि आज भारत में संस्कृत को महत्त्व देना कितना आवश्यक है।

18वीं शताब्दी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के ध्रुवीकरण की एक महत्वपूर्ण शताब्दी रही है। इसी शताब्दी में 'सर विलियम जोंस V' ने संस्कृत की खोज के साथ प्राच्य विद्या अनुसंधान की आधारशिला रखी। 'संस्कृत की खोज' से पाश्चात्य विद्वान एक 'भारोपीय भाषा परिवार' की नवीन अवधारणा का भी आविष्कार करने में सफल हुए, जिसका अर्थ है विश्व की सभी भाषाओं में संस्कृत भाषा का अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन। भाषा वैज्ञानिक-निष्कर्षों के परिणामस्वरूप एक

4. *न्याय सूत्र*, 2/18
5. Englend: www.vedikmamthes.org
6. Englend: www.vedikmamthes.org

ओर तुलनात्मक 'भाषा विज्ञान' और 'लिपि विज्ञान' जैसे नवीन अध्ययन-विषय प्रकाश में आए तो दूसरी ओर तुलनात्मक धर्म विज्ञान के माध्यम से 'विश्व संस्कृति' के इतिहास को जानने के लिए संस्कृत भाषा की महत्ता उभर कर आई यूरोपियन सभ्यताएँ वैदिक आर्यों के साथ अपने साँस्कृतिक संबंधों को जोड़ने की होड़ में लग गईं। नि:संदेह संस्कृत के कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आधुनिक व्याख्या संभव है तथा भारत को अंतर्राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त होता है।

सत्य तो यह है कि वैदिक काल से संस्कृत भाषा भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा होने के कारण भारत-भारती के रूप में व्यवहृत होती थी। वैदिक ऋषियों ने संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ लोक भाषाओं के अभ्युदय की कामना भी की है और भारतवर्ष के संविधान में अपनाये गए 'सर्वभाषा उन्नति' के सिद्धांत को स्वर प्रदान करते हुए कहा-*'आ भारती भारतीभि: सजोषा"*।

मध्यकाल में जब भारत अपनी राजनीतिक कमज़ोरियों के कारण राज्यों में विभक्त हो गया था, उस समय भी संस्कृत को कार्य व्यवहार और राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। वास्तविकता तो यही है कि भले ही हम अपने क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों के कारण प्रांतवाद और क्षेत्रवाद के गणित को अपनाते आए हैं, परंतु जब भी जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना और अखण्ड भारत की भावना आई है, उसका उदाहरण संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य ही रहा है।

सामान्यतया यह भ्रांत धारणा प्रचलित है कि मुसलमान शासकों के राज्यकाल में संस्कृत भाषा और साहित्य हतोत्साहित हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री रमेशचंद्र मजूमदार ने इस मिथ्या धारणा का खण्डन करते हुए कहा कि 'मुसलमान शासक संस्कृत प्रेमी थे और उनके शासन काल में संस्कृत को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिला।' क्षेमेन्द्र कृत 'लोकप्रकाश' नामक ग्रंथ में वर्णित है कि मुस्लिम शासन के प्रारंभ होने के बाद भी दीर्घ काल तक कश्मीर में संस्कृत राजकीय व्यवहार, कचहरियों और शासकीय आदेशों की भाषा रही थी। इस ग्रंथ में दैनिक शासन की लिखा-पढ़ी, प्रतिवेदन, प्रलेख आदि के जो नमूने दिये गए हैं, वे संस्कृतनिष्ठ ही हैं। 'लेखपद्धति' नामक ग्रंथ से यह भी ज्ञात होता है कि गुजरात के सुलतान बहुत समय तक राजभाषा के रूप में संस्कृत का ही व्यवहार करते आए थे। कश्मीर के इतिहास में जैनुल आबदीन (1420-70 ई.) संस्कृत साहित्य और भारतीय विद्याओं का अनन्य प्रेमी था। भारतवर्ष में अनेक ऐसी मुस्लिम कब्रें भी मिली हैं, जिन पर शिलालेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण हुए हैं। अब्दुल रहमान नामक प्रसिद्ध साहित्यकार संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश का मर्मज्ञ विद्वान था। अकबर के राज्यकाल में संस्कृत भाषा और उसके विद्वानों को विशेष समादर मिला था। अबुल फ़ज़ल के भाई संस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने हिंदी तथा संस्कृत की सम्मिश्रित भाषा में 'रहीम काव्य'

7. *ऋग्वेद*- 7.2.8

की रचना की तथा 'खेट कौतुकम्' नामक एक ज्योतिष ग्रंथ का भी निर्माण किया। शाहजहाँ के समय में भी संस्कृत को राजकीय सम्मान प्राप्त था। राजकुमार दाराशिकोह संस्कृत का पारंगत विद्वान् था, जिसकी प्रेरणा से उपनिषदों, भगवद्गीता, योगवाशिष्ठ का फ़ारसी भाषा में अनुवाद भी करवाया गया। मुस्लिम राजपरिवार की महिलाएँ भी संस्कृत-काव्य के प्रति मुग्ध थीं। शाहजहाँ की बेगम रूपराशि बंशीधर मिश्र की संस्कृत-रचनाओं से अत्यंत प्रभावित थीं। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा की माधुरी और उसके तत्वगाहन की प्रवृत्ति ने मुस्लिम शासन को भी मंत्र-मुग्ध कर लिया था तथा मुस्लिम शासकों, साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों ने इसके संवर्धन और विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस प्रकार संस्कृत भूत, भविष्य और वर्तमान भारत के लोकमानस की भव्य अभिव्यक्ति है। इसमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम का अखण्ड भारत प्रतिबिंबित है; विभिन्न धार्मिक और वैचारिक मान्यताओं के स्वर गुंजायमान हैं; राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक संस्कृत भाषा के साहित्यिक कलेवर में मानवीय सभ्यता के उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान की लहरें हिलोरें मार रही हैं।

आज भारतवर्ष में जो पाश्चात्य सभ्यता और विचारों का पोषण एवं पल्लवन किया जा रहा है, उसका मूल भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों और तत्वचिंतकों के ज्ञान-विज्ञान में निहित है। बात चाहे लोकतंत्र की हो या धर्मनिरपेक्षता की, स्वतंत्रता के अर्थ को समझना हो या फिर शांति अथवा विश्व-बंधुत्व के अभिप्राय को, संस्कृत साहित्य के निर्मल कलेवर में इसका वास्तविक अर्थ समझाया गया है। गणित शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, संगीत आदि ज्ञान-विज्ञान की महनीय परंपराएँ भारतवर्ष की अमूल्य निधियाँ हैं और ये सभी निधियाँ संस्कृत के पिटारे में बंद हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा व्यवस्था की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के मध्य में प्राच्य पाश्चात्य विवाद से हुई थी। मैकाले मिनट्स (1935) ने शिक्षा के माध्यम को अंग्रेज़ी में करने को कहा था जिसे लेकर विवाद तो चला लेकिन अंततः अंग्रेज़ी की ही जीत हुई और भारत में अंग्रेज़ी को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपना लिया गया उस समय तक पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई जाती थी परंतु अंग्रेज़ी के आने के बाद धीरे-धीरे संस्कृत का महत्त्व कम होता गया और भारत में अंग्रेज़ी का वर्चस्व छा गया। आज़ादी के बाद भी संस्कृत के प्रचार-प्रसार पर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। आज महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता अवश्य है लेकिन इसे रोज़गारपरक बनाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। अतः वैश्वीकरण के इस युग में युवा संस्कृत में रुचि नहीं ले रहे हैं। यही नहीं विद्यालयों में भी विद्यार्थी संस्कृत एवं हिंदी के स्थान पर आधुनिक यूरोपीय भाषा यथा फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश इत्यादि भाषाएँ पढ़ना अधिक पसंद करते हैं, हालत यह हो गई है कि कुछ विद्यालय संस्कृत भाषा के स्थान पर यूरोपियन भाषाएँ ही पाठ्यक्रम में रख रहे हैं।

यह संस्कृत भाषा के हित में नहीं है। इसलिए आवश्यकता है कि राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत भाषा को प्रोत्साहित किया जाएँ। विद्यालयों में संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ यथा नाटक, संस्कृत में वाद-विवाद इत्यादि। विद्यालय से विश्वविद्यालय स्तर तक संस्कृत का प्रचार बहुत आवश्यक है।

संस्कृत को पढ़ने के साथ जो समस्या जुड़ी थी वह यह है कि इसे कर्मकांडों की या नैतिक मूल्यों को फैलाने वाली भाषा के रूप में लिया जाता रहा, इससे इसके सौंदर्यबोधात्मक पक्ष और विविध साहित्य भी नज़रअंदाज़ होते रहे। अद्यतन शोधों ने ऐसी कई दबी हुई आवाज़ों को सामने प्रस्तुत किया। इसने संस्कृत भाषा की कई परंपराओं का भेद खोला और उन्हें संदर्भ प्रदान किया। संस्कृत पठन-पाठन के शिक्षाशास्त्र में इसका बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ेगा। आधुनिक भारतीय भाषा (एम.आई.एल.) के रूप में अब यह संभव हो गया है कि हम अपने पारंपरिक पाठ्यपुस्तकों के लेखकों को मना सकें कि वह अब केवल शास्त्रीय संस्कृत में ही नहीं बल्कि आम बातचीत के रूप में भी संस्कृत में लिखें, जो विद्यार्थी जीवन में प्रासंगिक हो। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एन.सी.ई.आर.टी., वर्ष-2005 पृ. सं. 18-19)

हमें नालंदा और तक्षशिला जैसे भारतीय विश्वविद्यालयों की भाँति विश्वस्तर पर शिक्षा -जगत् को ऊँचा उठाना है। मानव की मौलिक समस्याओं के विषय में भारतीय तत्वज्ञानियों ने जो अपने अनुभवपरक वैज्ञानिक सत्यों का रहस्योद्घाटन किया है, विश्व के बुद्धिजीवियों तक उन्हें पहुँचाना है। यह तभी संभव हो सकता है, जब राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत को प्रोत्साहन दिया जाए। राष्ट्रीय उन्नति के लिए साँस्कृतिक उन्नति आवश्यक है और संस्कृति का प्रसार संस्कृत से ही संभव है।

विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता का विकास

हंसराज पाल*

मंजुलता शर्मा**

सृजनात्मकता एक विशेष ढंग से चिंतन करने का तरीका होता है। यह व्यक्ति का नैसर्गिक गुण है। हर व्यक्ति थोड़ा बहुत सृजनशील होता ही है। सृजनात्मकता जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। भाषा इनमें से एक है।

प्रस्तुत लेख में शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता को विकसित करने के उपायों की चर्चा की गई है। सृजनात्मकता के तत्वों का भी इस लेख में विस्तार से विवरण दिया गया है। इस लेख के आधार पर शिक्षक स्वयं भी विषय और परिस्थितियों के अनुसार बच्चों में भाषा सृजनात्मकता के विकास हेतु पहल कर सकते हैं। इससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया भी प्रभावशील होगी।

भाषा हमारी अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसके द्वारा हम विचारों, भावनाओं, तथ्यों और सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति अच्छे कवि, लेखक, गीतकार, वक्ता बनते हैं (और अपनी सृजन शक्ति के आधार पर नयी-नयी रचनाएँ रचते हैं। सृजनात्मकता व्यक्ति का नैसर्गिक गुण होता है। हर व्यक्ति थोड़ा-बहुत सृजनशील होता ही है। यदि बालकों को प्रारंभ से ही सृजनात्मकता का प्रशिक्षण दिया जाए, तब वे बड़े होकर लेखक, चित्रकार, कवि इत्यादि बन सकते हैं। प्रस्तुत लेख में शाब्दिक सृजनात्मकता विकसित करने के उपाय दिए गए हैं। लेकिन इसके लिए सर्वप्रथम हमें सृजनात्मकता को जानना होगा।

सृजनात्मकता अंग्रेज़ी के क्रिएटिविटी (Creativity) शब्द का हिंदी पर्याय है, जिसका अर्थ है– निर्माण करने की योग्यता (Ability to Create)। अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु का सृजन करता है, कोई ऐसी वस्तु बनाता है जिसका निर्माण पहले न हुआ हो तब वह उस व्यक्ति की सृजनात्मकता कहलाती है। यह

* *उपाचार्य*, शिक्षा संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश

** *लेक्चरर*, श्री वैष्णव कॉलेज ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग, इंदौर, मध्यप्रदेश

सृजन किसी वस्तु एवं विचार का हो सकता है। जब किसी समस्या के समाधान के लिए उपाय सोचे जाते हैं, तब उनमें से जो उपाय सबसे अलग होता है वह सृजनात्मक कहलाता है यानि सृजनात्मकता एक विशेष ढंग से चिंतन करने का तरीका होता है। सृजनात्मकता की परिभाषा देते हुए जेम्स ड्रेवर (1971) ने कहा है– 'किसी नयी वस्तु का सृजन करने की योग्यता सृजनात्मकता है।' इस परिभाषा के अनुसार किसी भी नयी वस्तु का निर्माण सृजनात्मकता है। सृजनात्मकता के लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु जनमानस के लिए फायदे की होनी चाहिए। साथ ही केवल नयी वस्तु का निर्माण ही सृजन नहीं है बल्कि पहले से बनी वस्तुओं में अन्य तत्वों को मिलाकर कुछ नया बनाना भी सृजनात्मकता है, जैसे– घड़ी में केल्क्यूलेटर लगाना, चश्मे के साथ टोपी जोड़ना, मोबाइल में इंटरनेट की सुविधा प्रदान करना, कुर्सी में एक बटन लगाना जिससे कुर्सी आरामदायक सोफ़े में बदल जाए, इत्यादि। सृजनात्मकता के लिए सतत् प्रयास करने होते हैं, इसमें समय भी अधिक लगता है, अल्प समय में किसी वस्तु का सृजन नहीं होता है। सृजनात्मकता के लिए पहले से विद्यमान वस्तु में नए तत्वों का समन्वय सौंदर्यात्मक होना चाहिए। जैसे– मिठाइयों की सजावट, सलाद की सजावट, केक की सजावट, महिलाओं द्वारा स्वयं का शृंगार करना इत्यादि सौंदर्यात्मक समन्वय होता है। बहुदिश चिंतन (Divergent Thinking) करना ही सृजनात्मकता है। बहुदिश चिंतन अर्थात् परंपरा से हटकर प्रयोग करना, किसी वस्तु का उसकी प्रकृति से हटकर उपयोग करना, जो किसी ने नहीं सोचा ऐसा चिंतन करना बहुदिश चिंतन है।

सृजनात्मकता के तत्व (Elements of Creativity)

सृजनात्मकता के चार तत्व बताए गए हैं–

1. *मौलिकता (Originality)* – सृजनात्मकता के लिए यह आवश्यक है कि जिस भी वस्तु का निर्माण किया जाए वह मौलिक हो। कहीं से चुराई गई ना हो, न ही नकल की गई हो। दूसरे लोग किसी व्यक्ति की वस्तु को अपना ना बता दें, इसलिए लोग स्वयं द्वारा सृजित वस्तु का पेटेंट करवाते हैं। इस संबंध में एक किस्सा है– एक राजा ने एक बार मुनादी करवाई कि जो कोई दरबार में आकर ऐसी कहानी सुनाएगा जो किसी ने न सुनी हो तो मैं उसे ढेर-सा इनाम दूँगा। तब कई व्यक्तियों ने दरबार में आकर अपनी कहानी सुनाई। दरबार में कुछ एकपाठी व्यक्ति थे जिन्हें एक बार सुनने पर याद हो जाता था। अत: व्यक्तियों के द्वारा अपनी-अपनी कहानियाँ सुनाने पर उन्हें वह याद हो गई और उन्होंने कहा– 'यह कहानी हमने सुनी है।' उन्होंने वह कहानियाँ वैसी की वैसी सुना दीं। तब द्विपाठी व्यक्तियों (जिन्हें दो बार सुनने पर याद हो जाता था) ने कहा कि ये कहानी हमने भी सुनी है और उन्होंने भी वही कहानियाँ सुना दीं तब त्रिपाठी व्यक्तियों (जिन्हें तीन बार सुनने पर याद हो जाता था) ने भी कहानियों को सुना

हुआ बता दिया। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की कहानी को सभी व्यक्तियों ने सुना हुआ बताया। तब एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि मैं आपको एक सच्ची कहानी सुनाता हूँ– एक बार जंगल में आपके राजा आए, उन्हें बड़ी तेज़ प्यास लगी थी। तब मैंने उन्हें पानी पिलाया, खाना खिलाया और उनका आदर-सत्कार किया, तब उन्होंने कहा कि मेरे दरबार में आकर यह कहानी सुनाना, तब मैं तुम्हें एक हजार सोने की अशर्फ़ियाँ दूँगा। वही लेने मैं आज यहाँ आया हूँ। यह सुनकर दरबार में किसी ने नहीं कहा कि यह कहानी हमने सुनी है और राजा ने उस व्यक्ति को ढेर-सा ईनाम दिया।

चूँकि यह कहानी उस व्यक्ति की मौलिक रचना थी, अत: उसमें सृजनात्मकता थी।

2. *नम्यता (Flexibility)*– नम्यता अर्थात् व्यक्ति किसी समस्या के लिए कितनी अलग-अलग दिशाओं में सोचता है। समस्या के समाधान के लिए अनेक तरीकों को अपनाना नम्यता है।
3. *प्रवाहता (Fluency)*– व्यक्ति को किसी समस्या के समाधान के लिए कितनी जल्दी-जल्दी विचार आते हैं (यह उसकी प्रवाहता है)। विचारों की शीघ्र अभिव्यक्ति करना और उन विचारों का स्वतंत्र होना प्रवाहता है।
4. *संलग्नता (Consistency)*– किसी वस्तु का निर्माण करने में लगातार लगे रहना संलग्नता है।

सृजनात्मकता को जानने के पश्चात् अध्यापक को बच्चों में इसके विकास पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि सृजनशील व्यक्ति समाज की अमूल्य निधि होते हैं, उन्हीं पर राष्ट्र तथा समाज की उन्नति तथा उत्थान निर्भर करता है। सृजनात्मकता के दो प्रकार होते हैं– शाब्दिक एवं अशाब्दिक। एक बच्चा अपना सृजनात्मक व्यवहार लिखने में या कविताएँ बनाने में दिखा सकता है। यह उसकी शाब्दिक सृजनात्मकता है। एक बालक अपना सृजनात्मक व्यवहार चित्रकला, पेंटिंग, क्राफ्ट इत्यादि में दिखा सकता है। यह उसकी अशाब्दिक सृजनात्मकता है। कुछ विद्यार्थी शाब्दिक सृजनात्मकता में अच्छे होते हैं, जबकि कुछ की अशाब्दिक सृजनात्मकता अच्छी होती है। एक शिक्षक प्राथमिक विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता निम्नलिखित उपाय कर विकसित कर सकता है:

1. शिक्षक विद्यार्थियों को चित्र दिखाकर छोटी-सी कहानी लिखने को दें, कोई शीर्षक देकर उनसे कहानी लिखवाएँ। जैसे– 'एक जादुई लड़की' या 'नन्हा शहजादा' या 'गरीब राजकुमारी'। शीर्षक के बजाय कभी-कभी वाक्य देकर भी विद्यार्थियों से कहानी लिखवाई जा सकती है, जैसे– 'एक शहर में एक बनिया रहता था।'

   इससे विद्यार्थियों की शाब्दिक सृजनात्मकता विकसित करने में मदद मिलेगी।
2. शिक्षक विद्यार्थियों को चित्र दिखाकर या कुछ शब्द देकर उनसे कविता लिखवा सकते हैं। कुछ ऐसे शब्द दे सकते हैं जिनसे

तुकबंदी की जा सकती है, जैसे– सूरज, राजा, गोला, बोला या चंदा, ठंडा, रात, बात इत्यादि। बच्चों को खेलगीत बहुत पसंद होते हैं, और वे उन्हें सुनकर उनके जैसे अन्य गीतों की रचना शीघ्र कर लेते हैं। जैसे–

पानी बरसा छम-छम-छम,
छाता लेकर निकले हम।
पाँव फिसल गया, गिर गए हम,
छाता नीचे, ऊपर हम।

इस खेलगीत को सुनकर बच्चे इसी की तरह यह गीत बना सकते हैं–

'भूत आया ठम-ठम-ठम,
कंबल लेकर भागे हम।
पाँव फिसल गया, गिर गए हम,
भूत ऊपर, नीचे हम।

3. बच्चों से विद्यालय में कई तरह की वस्तुएँ जैसे– पत्तियाँ, पत्थर, पंख, तिनके, चूड़ी इत्यादि मंगवाकर उन पर कुछ वाक्य लिखने को दे सकते हैं, उनके विचार पूछ सकते हैं।
4. बच्चों से उन अनुभवों के बारे में लिखने को कह सकते हैं, जो उन्हें विद्यालय के बाहर प्राप्त हुए हैं या उन्होंने घर से विद्यालय आते समय जो-जो देखा उस पर बातें कर सकते हैं।
5. बच्चों को कक्षा से बाहर ले जाकर उन्हें कुछ ऐतिहासिक इमारतें (जैसे लाल किला, आमेर का किला, रानी रूपमती का महल, राजबाड़ा), मनोरंजक पार्क, संग्रहालय, बाँध (यशवंत सागर, पुनासा बाँध, चंबल विद्युत परियोजना), नदी, चिड़ियाघर इत्यादि दिखाकर उन पर चर्चा कर सकते हैं, और कुछ लिखवा सकते हैं।
6. बच्चों से ऐसी घटनाओं के बारे में पूछ सकते हैं जो उन्होंने देखी हों; जैसे– बारिश कैसे होती है? दिन-रात कैसे होते हैं?
7. बच्चों के समक्ष कुछ समस्याएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं और उनके समाधान लिखने को दिए जा सकते हैं; जैसे– यदि मनुष्य के पंख लग जाएँ तो क्या होगा? यदि सभी महिलाएँ गंजी हो जाएँ तो क्या होगा? यदि पक्षी मनुष्य की तरह बोलने लगें तो क्या होगा? इस तरह के प्रश्नों के उत्तर उनसे लिखवाकर या पूछकर प्राप्त किए जा सकते हैं और उनकी सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है।, उन्हें नए-नए विचार करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।
8. बच्चों को विभिन्न शब्द देकर उनके लिए पहेलियाँ बनाने को कहा जा सकता है। पहेलियाँ बनाने के लिए उन्हें तुकबंदी वाले शब्द दिए जा सकते हैं; जैसे - राजा-बाजा, आग-जाग, काले-खाले।
9. बच्चों को चित्र दिखाकर स्वयं को उस स्थिति में आरोपित करने को कहा जा सकता है। जैसे– यदि तुम शेर के मित्र होते तो क्या करते? यदि तुम खरगोश की जगह होते तो क्या करते? ये बंदर क्या सोच रहा है? छोटी लड़की अपनी मम्मी से क्या कह रही है? इस तरह के प्रश्न पूछकर

बच्चों द्वारा स्वयं को एक कल्पित स्थिति में डालकर कौन क्या कहेगा, यह कल्पना करने और उन्हें कैसा महसूस होगा, इसके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

10. बच्चों को चित्र दिखाकर या कोई घटना सुनाकर उसके बाद की स्थिति के लिए अनुमान लगाने को कहा जा सकता है। इससे बच्चे सोचने के लिए प्रेरित होते हैं कि आगे क्या होगा और अपने विचारों को शब्द देते हैं; जैसे - गीदड़ द्वारा युद्ध न लड़ने के लिए बोलने पर शेर ने क्या किया होगा? वह लड़का अब गुफ़ा से कैसे बाहर निकलेगा?
11. बच्चों को बात करने के अवसर देकर भी उनकी शाब्दिक सृजनात्मकता को बढ़ाया जा सकता है। हमारे विद्यार्थियों में बच्चों के बातें करने पर उन्हें रोका जाता है। कई बार तो अध्यापक द्वारा उन्हें दंडित भी किया जाता है। जबकि यदि बच्चों को कक्षा में बातें करने के अवसर दें तो वे नए-नए शब्द बोलना सीखते हैं और स्थितियों पर विचार भी करते हैं; जैसे - कई बार वे शिक्षिका को देखकर बातें करते हैं कि आज मैडम ने क्या पहना है, कल उन्होंने यह नहीं पहना था, वे क्या बोल रही हैं, चित्र में ये बालक क्या कर रहा है, इत्यादि।
12. उपरोक्त उपायों के अलावा शिक्षक स्वयं भी अपने विषय कालांश में छात्रों से प्रश्न करके उन्हें सोचने व बोलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। नए-नए विचारों के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। स्वयं मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग कर छात्रों को भी प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं।

संदर्भ

अम्बुकेन, टी, 1983, *दि सोशल साइकोलॉजी ऑफ क्रिएटिविटी*, स्प्रिंगर-वरलेग, न्यूयॉर्क

बरॉन, एफ, 1969, *क्रिएटिव परसन एण्ड क्रिएटिव प्रोसेस*, हॉल्ट, रिनहार्ट एण्ड विन्सटन, न्यूयॉर्क

कुमार, कृष्ण, 1996, *बच्चे की भाषा और अध्यापक : एक निर्देशिका,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली

पाल, हंसराज, 2006, *प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान*, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

पाल, हंसराज एवं शर्मा, मंजुलता, 2007, *प्रतिभाशालियों की शिक्षा,* शिप्रा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली